माणिकचंद्रग्रंथमाला पुष्प १६ वां.

श्री मद्देवसेनाद्याचार्यविरचित:

नयचक्रादिसंग्रह:

पं० वंशीधरेण संपाद्य सोलापुरत: स्वमुद्रणालये मुद्रित:

प्रकाशिका—

श्री माणिकचंददिगम्बरजैनग्रंथमालासमिति:।

वीरनिर्वाण स० २४४६

विक्रमाब्द १९७७

Printed by:—
Banshidhar at his " Shridhar " Printing press, Shukrawar peth 477 Sholapur.

Published by:—
Nathuram Premi, Secretary of Manikchand-granthamala Hirabag Girgaon Bombay.

संपादकीयवक्तव्यम्.

प्रथमतो दोहारूपेण द्रव्यस्वभावप्रकाशो नाम ग्रन्थ आसीद् दृष्टिपथम् । तदनु ग्रन्थ एको नयचक्रनामा गाथारूपेण श्रीमाहिल्ल-देवेन रचितः । स नष्ट इति श्रीदेवसेनगुरुणा ग्रन्थोयं पुनारचित इति प्रशस्त्यान्तिमया प्रकटीभवति ।

तद्यथा,

" दव्वसहावपयासं दोहयबंधेण आसि जं दिट्ठं ।
गाहाबंधेण पुणो रइयं माहल्लदेवेण ॥
दुसमीरणेण पोयंपेरिय संतं जहा तिरं णट्ठं ।
सिरिदेवसेणमुणिणा तह णयचक्कं पुणो रइयं ॥ "

अत्र समंतभद्रादीनां प्राचामाचार्याणां बहूनि वचनान्युद्धृता-न्युपलभ्यन्ते तानि अग्रे सूचीप्रकाशे समवलोकनीयानि ।

अग्रेत्र प्रकाशितोधिकाराणां क्रमः पत्रसंख्याक्रमेण । एवं सूत्रा-णामुद्धृतवचनानां च सूची आकराद्यादिक्रमेण दर्शिता । प्रागत्र लघुनयचक्रनामा ग्रंथो विंशतिपत्रपर्यंतं योजितस्ततो बृहन्नयचक्र-मास्ते । लघुनयचक्रे नयोपनयानां स्वरूपमुदाहरणानि च सन्ति। बृहति त्वत्र द्रव्यगुणपर्यायाणां सामान्यतो विशेषतश्च स्वरूपं वर्णितं रत्नत्रयस्वरूपं चास्ति । सूत्राणां प्राक् संस्कृतभाषायां या विषयसूची सर्वत्र वर्तते सका प्राचीना, प्राकृतसूत्राणां या च छाया सायेव कृतेति सुधियोऽधियो—

निवेदयंते—

वंशीधरण, सोलापुरतः

अधिकारसूची.

अधिकारनाम.	पृष्टं.
१ लघुनयचक्रं	१
१ बृहन्नयचक्रं	२१
२ पीठिका	२१
३ गुणाधिकारः	२३
४ पर्यायाधिकारः	२६
५ द्रव्याधिकारः	३०
६ पंचास्तिकायाधिकारः	४८
७ तत्त्वार्थाधिकारः	६१
८ प्रमाणाधिकारः	६५
९ नयाधिकारः	६७
१० निक्षेपाधिकारः	९१
११ दर्शनाधिकारः	९४
१२ ज्ञानाधिकारः	१०४
१३ सरागचारित्राधिकारः	१०५
१४ वीतरागचारित्राधिकारः	१०९
१५ निश्चयचारित्राधिकारः	११३
१६ उपोद्घातः	१२९

नयचक्र और श्री देवसेनसूरि ।

नयचक्र ।

आचार्य विद्यानन्दने अपने श्लोकवार्तिक (तत्त्वार्थसूत्र टीका) के नयविवरण नामक प्रकरणके अन्तमें लिखा है:—

> संक्षेपेण नयास्तावद्व्याख्याताः सूत्रसूचिताः ।
> तद्विशेषाः प्रपञ्चेन संचिन्त्या नयचक्रतः ॥

अर्थात् तत्त्वार्थसूत्रमें जिन नयोंका उल्लेख है, उनका हमने संक्षेपमें व्याख्यान कर दिया। यदि उनका विस्तारसे और विशेष पूर्वक स्वरूप जाननेकी इच्छा हो तो 'नयचक्र' से जानना।

इस उल्लेखसे मालूम होता है कि विद्यानन्द स्वामीसे पहले 'नयचक्र' नामका कोई ग्रन्थ था जिसमें नयोंका स्वरूप खूब विस्तारके साथ दिया गया है। परन्तु वह नयचक्र यही देवसेनसूरिका नयचक्र था, ऐसा नहीं जान पडता। क्योंकि यह बिलकुल ही छोटा है। इसमें कुल ८७ गाथायें हैं और माइल्ल धवलके बृहत् नयचक्रमें भी नय सम्बन्धी गाथाओंकी संख्या इससे अधिक नहीं है। इन दोनों ही ग्रन्थोंमें नयोंका स्वरूप बहुत संक्षेपमें लिखा गया है। इनसे अधिक तो स्वामी विद्यानन्दने ही नयविवरणमें लिख दिया है। नयविवरणकी श्लोकसंख्या ११८ है। और उनमें नयोंका स्वरूप बहुत ही उत्तम रीतिसे—नयचक्रकी भी अपेक्षा स्पष्टतासे—लिखा है। ऐसी दशामें यह संभव नहीं कि श्लोक-

वार्तिकके कर्ता अपने पाठकोंसे देवसेनसूरिके नयचक्रपरसे विस्तारपूर्वक नयोंका स्वरूप जाननेकी सिफारिश करते। इसके सिवाय जैसा आगे चलकर बतलाया जायगा, देवसेनसूरि कुछ भी विद्यानन्द स्वामीके पीछे हैं। अतः श्लोक वार्तिकमें जिस नयचक्रका उल्लेख है, वह कोई दूसरा ही नयचक्र होगा।

श्वेताम्बरसंप्रदायमें 'मल्लवादि' नामके एक बडे भारी तार्किक हो गये हैं। आचार्य हरिभद्रने अपने 'अनेकांत (१) जयपताका' नामक ग्रंथमें वादिमुख्य मल्लवादिकृत 'सम्मति (१) टीका' के कई अवतरण दिये हैं और श्रद्धेय मुनि जिनविजयजीने अनेकानेक प्रमाणोंसे हरिभद्रसूरिका समय (३) वि. सं० ७५७ से ९२७ तक सिद्धकिया है। अतः आचार्य मल्लवादि विक्रमकी आठवीं शताब्दिके पहलेके विद्वान् हैं, यह निश्चय है। और विद्यानन्दस्वामी विक्रमकी ९ वीं शताब्दिमें (४) हुए है, यह भी प्रायः निश्चित हो चुका है।

उक्त मल्लवादिका भी एक 'नयचक्र' नामका ग्रंथ है जिसका पूरा नाम 'द्वादशार—नयचक्र' है। जिसतरह चक्रमें आरे होते हैं, उसी तरह इसमें बारह आरे अर्थात्

---

१ अहमदाबादमें शेट मनसुखभाई भग्गूभाईके द्वारा छप चुका है। २ यह आचार्य सिद्धसेनसूरिके 'सम्मतितर्क' नामक ग्रंथकी टीका है। ३ देखो, जैन साहित्यसंशोधक अंक। ४ देखो जैनहितैषी वर्ष ९ अंक ९।

अध्याय हैं । यह ग्रंथ बहुत बडा है । इसपर आचार्य यशोभद्रजी की बनाई हुई एक टीका है जिसकी श्लोकसंख्या १८००० है । यह अनेक श्वेताम्बर पुस्तकालयोंमें उपलब्ध है । संभव है कि विद्यानन्दस्वामीने इसी नयचक्र को लक्ष करके पूर्वोक्त सूचना की हो । जिसतरह हरिवंशपुराण और आदिपुराणके कर्त्ता दिगंबर जैनाचार्योंने सिद्धसेनसूरिकी प्रशंसा की है जो कि श्वेताम्बराचार्य समझे जाते है उसी तरह विद्यानन्दस्वामीने भी श्वेतांबराचार्य मल्ल वादिके ग्रंथको पढने की सिफारिश की हो, तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है । जिस तरह सिद्धसेनसूरि तार्किक थे उसी तरह मल्लवादि भी थे और दिगंबर और श्वेतांबर संप्रदायके तार्किक सिद्धांतोंमें कोई महत्वका मतभेद भी नहीं है । तब नयसंबंधी एक श्वेतांबर तर्क ग्रन्थका उल्लेख एक दिगम्बराचार्य द्वारा किया जाना हमें तो असंभव नहीं मालूम होता । अनेक श्वेतांबर ग्रन्थकर्ताओंने भी इसी तरह दिगंबर ग्रन्थकारोंकी प्रशंसा की है और उनके ग्रन्थोंके हवाले दिये हैं ।

यह भी संभव है कि देवसेनके अतिरिक्त अन्य किसी दिगंबराचार्यका भी कोई नयचक्र हो और विद्यानन्दस्वामीने उसका उल्लेख किया हो । माइल्लधवलके बृहत् नयचक्रके अंतकी एक गाथा जो केवल बम्बईवाली प्रतिमे है, मोरेनाकी प्रतिमे नहीं है —यदि ठीक हो तो उससे इस बातकी पुष्टि होती है । वह गाथा

इस प्रकार है:—

दुसमीरणेण पोयं पेरियसंतं जहा ति (च्चि) रं नट्ठं ।
सिरिदेवसेन मुणिणा तह णयचक्कं पुणो रइयं ॥

इसका अभिप्राय यह है कि दुःषमकालरूपी आंधीसे पोत (जहाज) के समान जो नयचक्र चिरकालसे नष्ट हो गयाथा उसे देवसेन मुनिने फिरसे रचा । इससे मालूम होता है कि देवसेनके नयचक्रसे पहले कोई नयचक्र था जो नष्ट हो गया था और बहुत संभव है कि देवसेनने यह उसीका संक्षिप्त उद्धार किया हो ।

उपलब्ध ग्रंथोंमें नयचक्र नामके तीन ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं और माणिकचन्द्र ग्रन्थमालाके इस अंकमें वे तीनों ही नयचक्र प्रकाशित किये जाते हैं । १ आलापपद्धति, २ लघुनयचक्र, और ३ बृहत् नयचक्र । इनमेंसे पहला ग्रन्थ आलापपद्धति संस्कृतमें है और शेप दो प्राकृतमें ।

१ **आलापपद्धति**के कर्त्ता भी देवसेन ही हैं । डा० भाण्डार रिसर्च इन्स्टिटयुटके पुस्तकालयमें इस ग्रन्थकी एक प्रति है, उसके अन्तमें प्रतिलेखकने लिखा है— " इति सुखबोधार्थमालापपद्धतिः श्रीदेवसेनविरचिता समाप्ता । इति श्रीनयचक्र सम्पूर्णम् ॥ " उक्त पुस्तकालयकी * सूचीमें भी यह नयचक्र नामसे ही दर्ज है । बासोदाके भंडारकी सूचीमें भी जो बम्बईके दिगम्बर जैनमन्दिरके सरस्वती भण्डारमें मौजूद है, इसे नयचक्र संस्कृत गद्यके नामसे दर्ज

* सन १८८४–८६ की रिपोर्टके ५१९ वें नम्बरका ग्रन्थ देखो ।

किया है। पं० शिवजी लालजीकृत दर्शनसार-वचनिकामें देव-सेनके संस्कृत नयचक्रका जो उल्लेख है, वह भी जान पडता है, इसी आलापपद्धतिको लक्ष्य करके किया गया है। यद्यपि आलाप-पद्धतिमें नयचक्रका ही गद्यरूप सारांश है और वह नयचक्रके ऊपर ही की गई है, इसलिए कुछ लोगों द्वारा दिया गया उसका यह 'नयचक्र' नाम एक सीमातक क्षम्य भी हो सकता है; परन्तु वास्तवमें इसका नाम 'अलापपद्धति' ही है—नयचक्र नहीं।

आलापपद्धतिके प्रारंभमें ही लिखा है– "आलापपद्धतिर्वच-नरचनानुक्रमेण नयचक्रस्योपरि उच्यते।" इससे माळूम होता है कि आलापपद्धति नयचक्रपर ही प्रश्नोत्तररूप संस्कृतमें लिखी गई है। आलाप अर्थात् बोलचालकी पद्धतिपर अथवा वचनरच-नाके ढंगपर यह 'सुखबोधार्थ' या सरलतासे समझमें आनेके लिए बनाई गई है। इसकी प्रत्येक प्रतिमें इसे 'देवसेनकृता' लिखा भी मिलता है, इससे यह निश्चय हो जाता है कि यह नय-चक्रके कर्त्ता देवसेनकी ही रची हुई है—अन्य किसीकी नहीं।

२ लघुनयचक्र। श्रीदेवसेनसूरिका वास्तविक नयचक्र यही है। इसके साथ जो 'लघु' विशेषण लगाया गया है वह इसके आगेके ग्रंथको बडा देखकर लगा दिया गया है; परंतु वास्तवमें उसका नाम द्रव्यस्वभाव प्रकाश है और उसके कर्त्ता माइल्लधवल है जैसा कि आगे सिद्ध किया गया है। इसलिये इसका नयचक्रके ही नामसे उल्लेख किया जाना चाहिए।

श्वेतांबराचार्य यशोविजयजी उपाध्यायने अपने ' द्रव्यगुणपर्यय रास ' [गुजराती] में देवसेनके नयचक्रका कई जगह उल्लेख किया है और उक्त रासके आधारसे ही लिखे हुए द्रव्यानुयोगतर्कणा नामक संस्कृत ग्रन्थमें भी उक्त उल्लेखोंका अनुवाद किया है। एक उल्लेख इस प्रकार है:—

नयाश्चोपनयाश्चैते तथा मूलनयावपि।
इत्थमेव समादिष्टा नयचक्रेऽपि तत्कृता ॥८॥

एते नया उक्तलक्षणाश्च पुनरुपनयास्तथैव द्वौ मूलनयावपि निश्चयेनेत्थममुना प्रकारेणैव नयचक्रेऽपि दिगम्बरदेवसेनकृते शास्त्रे नयचक्रेपि तत्कृता तस्य नयचक्रस्य कृता उत्पादकेन समादिष्टं कथितं । एतावता दिगम्बरमतानुगतनयचक्रग्रन्थपाठपठितनयोपनयमूलनयादिकं सर्वमपि सर्वज्ञप्रणीतसदागमोक्तयुक्तियोजनासमानतत्त्वमेवास्ते न किमपि विसंवादितयास्तीति *।"

उक्त ' तर्कणा ' में जो नयोंका स्वरूप दिया है, वह बिलकुल ' नयचक्र ' का अनुवाद है और इसे स्वयं ग्रन्थकर्त्ता भोजसागरने स्वीकार किया है। इससे निश्चय हो जाता है कि उपाध्याय यशोविजयजी और तर्कणाके कर्ता भोजसागर इसी नयचक्रको देवसेनका रचा हुआ समझते थे।

---

* देखो रामचंद्रशास्त्रमालाद्वारा प्रकाशित ' द्रव्यानुयोगतर्कणा ' अध्याय ८ श्लोक ८ पृष्ठ ११५।

दर्शनसारकी वचनिकाके कर्ता पं. शिवजीलालजीने देवसेन-सूरिके बनाये जिन सब ग्रन्थोंके नाम दिये हैं उनमें प्राकृत नयचक्र भी है। अर्थात् उनके मतसे भी यह देवसेनकी ही कृति है।

यह ग्रन्थ बृहत् नयचक्र (द्रव्यस्वभाव प्रकाश) में से छाटकर जुदा निकाला हुआ नहीं है। यह बात इस ग्रंथको आदिसे अंततक अच्छी तरह बाँच लेनेसे ही ध्यानमें आ जाती है। यह संपूर्ण ग्रन्थ है। और स्वतंत्र है। यह इसकी रचना पद्धतिसे ही मालूम हो जाता है। नयोंको छोडकर इसमें अन्य विषयोंका विचार भी नहीं किया गया है। इसके अंतकी नं. ८६ और ८७ की गाथाओंसे (पृष्ठ १९–२०) यह भी स्पष्ट हो जाता है कि इसका नाम नयचक्र ही है– उसके साथ कोई ‘ लघु ’ आदि विशेषण नहीं है।

२ बृहत् नयचक्र इसका वास्तविक नाम ‘दव्वसहावपयास’ (द्रव्यस्वभाव–प्रकाश) या ‘ द्रव्यस्वभाव प्रकाशक नयचक्र ’ है। ग्रंथकर्ताने स्वयं इस नामको ग्रंथके प्रारंभमें और अंतमें कई जगह व्यक्त किया है। नयचक्र तो इसका नाम हो ही नहीं सकता है, क्योंकि नयोंके अतिरिक्त द्रव्य, गुण, पर्याय, दर्शन, ज्ञान, चरित्र आदि अन्य अनेक विषयोंका इसमें वर्णन किया गया है। यह एक संग्रह ग्रन्थ है। जिसतरह इसमें भगवत्कुंद-कुंदाचार्य कृत पंचास्तिकाय प्रवचनसार आदि की गाथाओंको और उनके अभिप्रायोंको संग्रह किया गया है, उसीतरह लग-

भग पूरे नयचक्रको भी इसमें शामिल कर लिया गया है; यहाँतक कि मंगलाचरण की और अंतकी नयचक्रकी प्रशंसा-सूचक गाथायें भी नहीं छोडी हैं। जान पडता है कि नय-चक्रकी उक्त प्रशंसासूचक गाथाओंके कारण ही लोगोंको भ्रम हो गया है और वे इसे 'बृहत् नयचक्र' कहने लगे हैं।

इसके प्रारंभकी उत्थानिकामें लिखा है:— "श्रीकुंदकुंदाचार्यकृतशास्त्राणां सारार्थं परिगृह्य स्वपरोपकाराय द्रव्यस्व-भावप्रकाशकं नयचक्रं मोक्षमार्गं कुर्वन् गाथाकर्ता (१)....इष्ट-देवताविशेषं नमस्कुर्वन्नाह—। यहाँ द्रव्यस्वभावप्रकाशक न-यचक्रका विशेषण है। संग्रहकर्ताका इससे यह अभिप्राय भी हो सकता है कि यह नयचक्रयुक्त द्रव्यस्वभावप्रकाशक ग्रंथ है।

अब हमें यह देखना चाहिए कि इस 'द्रव्यस्वभावप्रकाश' के कर्ता कौन हैं।

दव्वसहावपयासं दोहयबंधेण आसि जं दिट्ठं।
तं गाहाबंधेण य रइयं माइल्ल धवलेण॥
दुसमीर पोयमि(नि) वाय पा(या) ता(णं) सिरिदेवसे-
णजोईणं।

---

१ बम्बईवाली प्राचीन प्रतिमें यहां गाथाकर्ता ही पाठ है, जब कि मोरेनाकीमें ग्रंथकर्ता है। वास्तवमें गाथा कर्ता ही होना चाहिए यही पाठ छपना भी चाहिए था।

तेसिं पायपसाए उवलद्धं समणतच्चेण ॥

पहली गाथाका अर्थ यह है कि ' दव्वसहावपयास ' नामका एक ग्रन्थ था जो दोहा छंदोंमें बनाया हुआ था। उसीको माइल्ल धवलने गाथाओंमे रचा।

दूसरी गाथा बहुत कुछ अस्पष्ट है; फिर भी उसका अभिप्राय लगभग यह है कि श्रीदेवसेन योगीके चरणोंके प्रसादसे यह ग्रंथ बनाया गया।

यह गाथा बम्बईकी प्रतिमें नहीं है, मोरेनाकी प्रतिमें है। बम्बईकी प्रतिमें इसके बदले ' दुसमीरणेण पोयं पेरियसंतं ' आदि गाथा है जो ऊपर एक जगह उद्धृत की जा चुकी है और जिसमें यह बतलाया गया है कि देवसेनमुनिने पुराने नष्ट हुए नयचक्रको फिरसे बनाया।

मोरेनावाली प्रतिकी गाथा यदि ठीक है तो उससे केवल यही मालूम होता है कि माइल्ल धवलका देवसेनसूरिसे कुछ निकटका गुरुसंबंध होगा। बम्बईवाली प्रतिकी गाथा माइल्ल धवलसे कोई संबंध नहीं रखती है—वह नयचक्र और देवसेनसूरिकी प्रशंसावाचक अन्य तीन चार गाथाओंके समान एक जुदी ही प्रशस्ति गाथा है।

नीचे लिखी गाथामें कहा है कि दोहा छंदमें रचे हुए द्रव्य स्वभाव प्रकाशको सुनकर सुहंकर या शुभंकर नामके कोई सज्जन जो संभवत माइल्ल धवलके मित्र होंगे हंसकर बोले कि दोहाओंमे यह अच्छा नहीं लगता; इसे गाथाबद्ध कर दो:—

भग पूरे नयचक्रको भी इसमें शामिल कर लिया गया है; यहाँतक कि मंगलाचरण की और अंतकी नयचक्रकी प्रशंसा-सूचक गाथायें भी नहीं छोडी हैं! जान पडता है कि नय-चक्रकी उक्त प्रशंसासूचक गाथाओंके कारण ही लोगोंको भ्रम हो गया है और वे इसे 'बृहत् नयचक्र' कहने लगे हैं।

इसके प्रारंभकी उत्थानिकामें लिखा है:— "श्रीकुंदकुंदाचार्यकृतशास्त्राणां सारार्थं परिगृह्य स्वपरोपकाराय **द्रव्यस्वभावप्रकाशकं** नयचक्रं मोक्षमार्गं कुर्वन् गाथाकर्ता (१)....इष्टदेवताविशेषं नमस्कुर्व्वन्नाह —। यहाँ द्रव्यस्वभावप्रकाशक नयचक्रका विशेषण है। संग्रहकर्ताका इससे यह अभिप्राय भी हो सकता है कि यह नयचक्रयुक्त द्रव्यस्वभावप्रकाशक ग्रंथ है।

अब हमें यह देखना चाहिए कि इस 'द्रव्यस्वभावप्रकाश' के कर्ता कौन हैं।

दव्वसहावपयासं दोहयबंधेण आसि जं दिट्ठं।
तं गाहाबंधेण य रइयं माइल्ल धवलेण॥
दुसमीर पोयमि(नि) वाय पा(या) ता(णं) सिरिदेवसे-णजोईणं।

१ बम्बईवाली प्राचीन प्रतिमें यहां गाथाकर्ता ही पाठ है, जब कि मोरेनाकीमें ग्रंथकर्ता है। वास्तवमें गाथा कर्ता ही होना चाहिए यही पाठ छपना भी चाहिए था।

तेसिं पायपसाए उवलद्धं समणतच्चेण ॥

पहली गाथाका अर्थ यह है कि 'दव्वसहावपयास' नामका एक ग्रन्थ था जो दोहा छंदोंमें बनाया हुआ था। उसीको माइल्ल धवलने गाथाओंमें रचा।

दूसरी गाथा बहुत कुछ अस्पष्ट है; फिर भी उसका अभिप्राय लगभग यह है कि श्रीदेवसेन योगीके चरणोंके प्रसादसे यह ग्रंथ बनाया गया।

यह गाथा बम्बईकी प्रतिमें नहीं है, मोरेनाकी प्रतिमें है। बम्बईकी प्रतिमें इसके बदले 'दुसमीरणेण पोयं पेरियसंतं' आदि गाथा है जो ऊपर एक जगह उद्धृत की जा चुकी है और जिसमें यह बतलाया गया है कि देवसेनमुनिने पुराने नष्ट हुए नयचक्रको फिरसे बनाया।

मोरेनावाली प्रतिकी गाथा यदि ठीक है तो उससे केवल यही मालूम होता है कि-माइल्ल धवलका देवसेनसूरिसे कुछ निकटका गुरुसंबंध होगा। बम्बईवाली प्रतिकी गाथा माइल्ल धवलसे कोई संबंध नहीं रखती है—वह नयचक्र और देवसेनसूरिकी प्रशंसावाचक अन्य तीन चार गाथाओंके समान एक जुदी ही प्रशस्ति गाथा है।

नीचे लिखी गाथामें कहा है कि दोहा छंदमें रचे हुए द्रव्य स्वभाव प्रकाशको सुनकर सुहंकर या शुभंकर नामके कोई सज्जन जो संभवत माइल्ल धवलके मित्र होंगे हंसकर बोले कि दोहाओंमें यह अच्छा नहीं लगता; इसे गाथाबद्ध कर दो:—

सुणिऊण दोहरत्थं सिग्घं हसिऊण सुहंकरो भणइ।
एत्थ ण सोहइ अत्थो गाहाबंधेण तं भणह ॥

इससे भी यही माल्हम होता है कि 'दव्वसहावपयास' पहले दोहाबद्ध था और उसे माइल्ल धवलने गाथाबद्ध किया है। माइल्ल धवल गाथा कर्ता ही हैं, इसका खुलासा इस ग्रन्थकी उत्थानिकासे भी हो जाता है जहां लिखा है कि गाथाकर्ता (ग्रन्थ-कर्ता नहीं) इष्ट देवताको नमस्कार करते हुए कहते हैं।

नीचे लिखी गाथाओंसे भी यह प्रकट होता है कि इस ग्रन्थ के कर्ता देवसेनसूरि नहीं किंतु माइल्ल धवल हैं:—

दारियदुण्णयदणुयं परअप्पपरिक्खतिक्खखरधारं।
सव्वण्हुविण्हुचिण्हं सुदंसणं णमह णयचक्कं ॥
सुयकेवलीहिं कहियं सुअसमुद्दअमुदमयमाणं।
बहुभंगभंगुराविय विराजियं णमह णयचक्कं ॥
सियसद्दसुणयदुण्णयदणुदेह विदारणेक्कवरवीरं।
तं देवसेणदेवं णयचक्कयरं गुरुं णमह ॥

इनमेंसे पहली दो गाथाओंमें नयचक्रकी प्रशंसा करके कहा है कि ऐसे विशेषणों युक्त नयचक्रको नमस्कार करो और तीसरी गाथामें कहा है कि दुर्नयरूपी राक्षसको विदारण करनेवाले श्रेष्ठ वीर गुरु देवसेनको जो नयचक्रके कर्ता हैं—नमस्कार करो। यदि इस ग्रंथके कर्ता स्वयं देवसेन होते तो वे अपने

लिये गुरु आदि शब्दोंका प्रयोग न करते और न यही कहते कि तुम उन देवसेनको और उनके नयचक्रको नमस्कार करो।

इन सब बातोंसे सिद्ध है कि छोटे नयचक्रके कर्ता ही देवसेन हैं और माइल्लधवल उन्हींको लक्ष्य करके उक्त प्रशंसा करते हैं। माइल्लधवलने देवसेनसूरिके पूरे नयचक्रको अपने इस ग्रन्थमें अन्तर्गर्भित करलिया है। ऐसी दशामें उनका इतना गुणगान करना आवश्यक भी हो गया है।

माइल्लधवलने इसके सिवाय और कोई ग्रंथ भी बनाये हैं या नहीं और ये कब कहां हुए हैं, इसका हम कोई पता नहीं लगा सके। आश्चर्य नहीं जो वे देवसेनके ही शिष्योंमें हों, जैसाकि मोरेनाकी प्रतिकी अंतिम गाथासे और देवसेनके श्रेष्ठ गुरु शब्दका प्रयोग देखनेसे जान पडता है।

देवसेनसूरि।

नयचक्रके संबंधमें इतनी आलोचना करके अब हम संक्षेपमें इसके कर्ता देवसेनसूरिका परिचय देना चाहते हैं। इनका बनाया हुआ एक भावसंग्रह नामका ग्रन्थ है। उसमें वे अपने विषयमें इस प्रकार कहते हैं:—

सिरिविमलसेण (१) गणहरसिस्सो णामेण देवसेणुत्ति।

१—श्रीविमलसेनगणधरशिष्यः नाम्नेन देवसेन इति।
अबुधजनबोधनार्थं तेनेदं विरचितं सूत्रं॥

अबुहजणबोहणत्थं तेणेयं विरइयं सुत्तं ॥

इससे मालूम होता है कि इनके गुरुका नाम श्रीविमलसेन गणधर [गणी] था। दर्शनसार नामक ग्रन्थके अंतमें वे अपना परिचय देते हुए लिखते हैं:—

पुव्वायरियकयाइं [१] गाहाइं संचिऊण एयत्थ।
सिरिदेवसेणगणिणा धाराए संवसंतेण ॥४९॥
रइओ [२] दंसणसारो हारो भव्वाण णवसए नवए।
सिरिपासणाहगेहे सुविसुद्धे माहसुद्धदसमीए ॥५०॥

अर्थात् पूर्वाचार्योंकी रची हुई गाथाओंको एक जगह संचित करके श्रीदेवसेन गणिने धारा नगरीमें निवास करते हुए पार्श्वनाथके मंदिरमें माघ सुदी दशवीं विक्रम [३] संवत् ९९० को यह दर्शनसार नामक ग्रन्थ रचा। इससे निश्चय हो जाता है कि उनका अस्तित्व काल विक्रमकी दशवीं शताब्दि है। अपने अन्य

१—पूर्वाचार्यकृता गाथाः संचयित्वा एकत्र।
श्रीदेवसेनगणिना धारायां संवसता ॥४९॥

२—रचितो दर्शनसारो हारो भव्यानां नवशते नवतौ।
श्रीपार्श्वनाथगेहे सुविशुद्धे माघशुद्धदशम्याम् ॥५०॥

३—दर्शनसारकी अन्य गाथाओंमे जहां जहां संवत्का उल्लेख किया है, वहां वहां ‘ विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स ’ पद देकर विक्रम संवत ही प्रकट किया है। इसके सिवाय धारा (मालवा) में विक्रम संवत ही प्रचलित रहा है।

किसी ग्रन्थमें उन्होंने ग्रंथ-रचनाका समय नहीं दिया है।

यद्यपि इनके किसी ग्रन्थमें इस विषयका उल्लेख नहीं है कि वे किस संघके आचार्य थे; परन्तु दर्शनसारके पढनेसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वे मूलसंघके आचार्य थे। दर्शनसारमें उन्होंने काष्ठासंघ, द्रविडसंघ, माथुरसंघ और यापनीयसंघ आदि सभी दिगम्बरसंघोंकी उत्पत्ति बतलाई है और उन्हें मिथ्यार्ती कहा है परन्तु मूलसंघके विषयमें कुछ नहीं कहा है। अर्थात् उनके विश्वासके अनुसार यही मूलसे चला आया हुआ असली संघ है।

दर्शनसारकी ४३ वी गाथामें [१] लिखा है कि यदि आचार्य पद्मनन्दि (कुन्दकुन्द) सीमन्धर स्वामीद्वारा प्राप्त दिव्यज्ञान के द्वारा बोध न देते तो मुनिजन सच्चे मार्गको कैसे जानते। इससे यह भी निश्चय हो जाता है कि वे श्रीकुन्दकुन्दाचार्यकी आम्नाय में थे।

भावसंग्रह (२) (प्राकृत) में जगह जगह दर्शसारकी अनेक गाथा उद्धृत की गई हैं और उनका उपयोग उन्होंने स्वनिर्मित गाथाओंकी भांति किया है। इससे इस विषयमें कोई संदेह नहीं र-

---

१ जइ पउमणंदिणाहो सीमंधरसामिदिव्वणाणेण। ण विवोहइ तो समणा कहं सुमग्गं पयाणंति ॥

२ भावसंग्रह 'माणिकचंद ग्रंथमाला' में शीघ्र ही छपनेवाला है। प्रेसमें दिया जा चुका है।

हता कि दर्शनसार और भावसंग्रह दोनोंके कर्ता एक ही देवसेन हैं।

इनके सिवाय आराधनासार (१) और तत्त्वसार [२] नामके ग्रंथ भी इन्हीं देवसेनके बनाये हुए हैं।

पं. सिवजीलालने इनके 'धर्मसंग्रह' नामके एक और ग्रंथका उल्लेख किया है; परंतु वह अभीतक हमारे देखनेमें नहीं आया है।

मुद्रण।

स्वनामधन्य स्वर्गीय पंडित गोपालदासजीने चार पांच वर्ष पहले इस ग्रंथके प्रकाशित कराने की इच्छा प्रकट की थी। उन्होंने अपने शिष्य पं. वंशीधरजीसे इसकी [द्रव्यस्वभाव प्रकाशकी) एक प्रेस कापी भी संस्कृत छायासहित तैयार कराके भेज दी थी, परंतु उसमें जगह जगह पाठ छूटे हुए थे और अनेक स्थल सन्देहास्पद भी थे। इसलिए जबतक दूसरी शुद्ध प्रति प्राप्त न हो गई, तब तक यह न छप सका। इसके बाद इसकी कुछ प्रतियां मिलगईं और अब उनकी सहायतासे मुद्रीत कराके प्रकाशित किया जाता है। नीचे लिखी प्रतियोंसे इसका संशोधन हुआ है:—

---

१ माणिकचंद ग्रंथमालाका छट्ठा ग्रंथ। श्रीरत्ननन्दि आचार्यकृत टीकासहित छपा है।

२ मा. ग्रं० मालाके १३ वें अंकमें यह छप चुका है।

१ मोरेनाकी पूज्यपाद पं. गोपालदासजीकी कराई हुई कापी पर से।

२ स्वर्गीय दानवीर सेठ माणिकचंदजीके चौपाटीके मंदिर की नयचक्र और द्रव्यस्वभाव प्रकाशकी प्रतियों परसे। ये दोनों प्रतियां एक ही लेखकके हातकी लिखी हुई हैं और लगभग ४०० वर्ष पहले की हैं। प्रायः शुद्ध हैं।

३ शोलापूरके सरस्वती भण्डारकी एक प्रतिपरसे जो संवत १९३५ की लिखी हुई है और शुद्ध है।

एक बार इसकी प्रेसकापी पं० इन्द्रलालजी साहित्य शास्त्री जयपुरके पास भेजी गई थी और उन्होंने उसका कुछ भाग वहाँके किसी सरस्वती भण्डारकी प्रतिपरसे शुद्ध कर दिया था।

आलापपद्धतिका मुद्रण, निर्णयसागरमें श्री० पं० पन्नालालजी वाकलीवालके प्रयत्नसे छपी हुई प्रतिपरसे कराया गया है।

इस ग्रन्थका सम्पादन और संशोधन श्रीयुक्त पं० वंशीधरजी शास्त्री न्यायतीर्थने किया है। और उन्हींके श्रीधर प्रेसमें यह मुद्रित हुआ है।

पूना:—
द्वितीय श्रावण वदी २
सं० १९७७ वि०

निवेदक—नाथूराम प्रेमी
मंत्री.

उध्धृत वचनानां सूची.

मूलसूत्राणामकाराद्यनुक्रमसूची.

अ.

॥ श्रीवीतरागाय नमः ॥

श्रीदेवसेनविरचितं

लघु नयचक्रम्॥

वीरं विसयविरत्तं विगयमलं विमलणाणसंजुत्तं ।
पणविवि वीरजिणिंदं पच्छा णयलक्खणं वोच्छं ॥१॥

वीरं विषयविरक्तं विगतमलं विमलज्ञानसंयुक्तम् ।
प्रणम्य वीरजिनेन्द्रं पश्चान्नयलक्षणं वक्ष्ये ॥ १ ॥

जं णाणीण वियप्पं सुयभेयं वत्थुयंससंगहणं ।
तं इह णयं पउत्तं णाणी पुण तेहि णाणेहिं ॥ २ ॥

यो ज्ञानिनां विकल्पः श्रुतभेदो वस्त्वंशसंग्रहणम् ॥
स इह नयः प्रोक्तः ज्ञानी पुनस्तैर्ज्ञानैः ॥ २ ॥

जह्मा ण णएण विणा होइ णरस्स सियवायपडिवत्ती ।
तह्मा सो बोहव्वो एअंतं हंतुकामेण ॥ ३ ॥

यस्मान्न नयेन विना भवति नरस्य स्याद्वादप्रतिपत्तिः ॥
तस्मात्स बोद्धव्य एकान्तं हन्तुकामेन ॥ ३ ॥

जह सद्धाणंमाई सम्मत्तं जह तवाइगुणणिलये ।

धाओ वा एयरसं तह णयमूलो अणेयंतो ॥ ४ ॥
यथा श्रद्धानमादिः सम्यक्त्वं यथा तपआदिगुणनिलये ।
धातुर्वा एकरसस्तथा नयमूलोऽनेकान्तः ॥ ४ ॥
तच्चं विस्सवियप्पं एयवियप्पेण साहए जो हु ।
तस्स ण सिज्झइ वत्थु किह एयंतं पसाहेदि ॥ ५ ॥
तत्वं विश्वविकल्पं एकविकल्पेन साधयेद्यो हि ।
तस्य न सिद्ध्यति वस्तु कथमेकान्तं प्रसाधयेत् ॥ ५ ॥
धम्मविहीणो सोक्खं तहूणाछेयं जलेण जह रहिदो ।
तह इह वंछइ मूढो णयरहिओ दव्वणिच्छित्ती ॥ ६ ॥
धर्मविहीनः सौख्यं तृष्णाच्छेदं जलेन यथा रहितः ।
तथेह वाञ्छति मूढो नयरहितो द्रव्यनिश्चितिम् ॥ ६ ॥
जह ण विभुंजइ रज्जं राओ गिहभेयणेण परिहीणो ।
तह झादा णायव्वो दवियणिछित्तीहिं परिहीणो ॥७॥
यथा न विभुनक्ति राज्यं राजा गृहभेदनेन परिहीणः ।
तथा ध्याता ज्ञातव्यो द्रव्यनिश्चितिभिः परिहीणः ॥७॥
बुज्झहता जिणवयणं पच्छा णिजकज्जसंजुआ होह ।
अहवा तंदुलरहियं पलालसंधूणणं सव्वं ॥८॥
बुध्यन्तु जिनवचनं पश्चान्निजकार्यसंयुता भवत ।
अथवा तंदुलरहितं पलालसन्धूननं सर्व्वम् ॥८॥
एअंतो एअणयो होइ अणेयंतमस्स सम्मूहो ।
तं खलु णाणवियप्पं सम्मं मिच्छं च णायव्वं ॥९॥
एकान्त एकनयो भवति अनेकान्तोऽस्य समूहः ।

स खलु ज्ञानविकल्पः सम्यग्दृष्टिना च ज्ञातव्यः ॥९॥

जे णयदिट्ठिविहीणा तेसिं ण हु वत्थुरूवउवलद्धि ।
वत्थुसहावविहूणा सम्माइट्ठी कहं हुंति ॥१०॥

ये नयदृष्टिविहीनास्तेषां न खलु वस्तुरूपोपलब्धिः ।
वस्तुस्वभावविहीनाः सम्यग्दृष्टयः कथं भवन्ति ॥१०॥

दो चेव मूलिमणया भणिया दव्वत्थपज्जयत्थगया ।
अण्णं असंखसंखा ते तब्भेया मुणेयव्वा ॥११॥

द्वौ चैव मूलनयौ भणितौ द्रव्यार्थपर्यायार्थगतौ ।
अन्येऽसंख्यसंख्यास्ते तद्भेदा ज्ञातव्याः ॥११॥

नैगम संगह ववहार तहय रिउसुत्त सद्द अभिरूढा ।
एवंभूयो णवविह णयावि तह उवणया तिण्णि ॥१२॥

नैगमः संग्रहः व्यवहारस्तथा ऋजुसूत्रः शब्दः समभिरूढः ।
एवंभूतो नवविधा नया अपि तथोपनयास्त्रयः ॥१२॥

दव्वत्थं दहभेयं छब्भेयं पज्जयत्थियं णेयं ।
तिविहं च णेगमं तह दुविहं पुण संगहं तत्थ ॥१३॥
ववहारं रिउसुत्तं दुवियप्पं सेसमाहु एक्केक्का ।
उत्ता इह णयभेया उपणयभेयावि पभणामो ॥१४॥

द्रव्यार्थिको दशभेदः षड्भेदः पर्यायार्थिको ज्ञेयः ।
त्रिविधश्च नैगमस्तथा द्विविधः पुनः संग्रहस्तत्र ॥१३॥
व्यवहारर्जुसूत्रौ द्विविकल्पौ शेषा हि एकैके ।
उक्ता इह नयभेदा उपनयभेदानपि प्रभणामः ॥१४॥

सब्भूयमसब्भूयं उवयरियं चेव दुविह सब्भूयं ।
तिविहं पि असब्भूयं उवयरियं जाण तिविहं पि ॥१५॥
सद्भूतमसद्भूतमुपचरितं चैव द्विविधं सद्भूतं ।
त्रिविधमप्यसद्भूतमुपचरितं जानीहि त्रिविधमपि ॥१५॥

दव्वत्थिए य दव्वं पज्जायं पज्जयत्थिए विसयं ।
सब्भूयासब्भूए उवयरिए च दुणवतियत्था ॥१६॥
द्रव्यार्थिके च द्रव्यं पर्यायः पर्यायार्थिके विषयः ।
सद्भूतासद्भूते उपचरिते च द्विनवत्रिकार्थाः ॥१६॥

पज्जय गउणं किच्चा दव्वं पिय जो हु गिहणए लोए ।
सो दव्वत्थो भणिओ विवरीओ पज्जयत्थो दु ॥१७॥
पर्यायं गौणं कृत्वा द्रव्यमपि च यो हि गृह्णाति लोके ।
स द्रव्यार्थो भणितः विपरीतः पर्यायार्थस्तु ॥१७॥

कर्मोपाधिनिरपेक्षः शुद्धद्रव्यार्थिकः ।

कम्माणं मज्झगयं जीवं जो गहइ सिद्धसंकासं ।
भण्णइ सो सुद्धणओ खलु कम्मोवाहिणिरवेक्खो ॥१८॥
कर्मणां मध्यगतं जीवं यो गृह्णाति सिद्धसंकाशम् ।
भण्यते स शुद्धनयः खलु कर्मोपाधिनिरपेक्षः ॥१८॥

उत्पादव्ययगौणत्वेन सत्ताग्राहकः शुद्धद्रव्यार्थिकः ।

उप्पादवयं गोणं किच्चा जो गहइ केवला सत्ता ।
भण्णइ सो सुद्धणओ इह सत्तागाहओ समए ॥१९॥
उत्पादव्ययं गौणं कृत्वा यो गृह्णाति केवलां सत्ताम् ।

भण्यते स शुद्धनयः इह सत्ताग्राहकः समये ॥१९॥

भेदकल्पनानिरपेक्षः शुद्धद्रव्यार्थिकः।

गुणगुणियाइचउक्के अत्थे जो णो करेइ खलु भेयं।
सुद्धो सो दव्वत्थो भेदवियप्पेण णिरवेक्खो ॥२०॥

गुणगुण्यादिचतुष्केऽर्थे यो न करोति खलु भेदम्।
शुद्धः स द्रव्यार्थो भेदविकल्पेन निरपेक्षः ॥२०॥

कर्मोपाधिसापेक्षोऽशुद्धद्रव्यार्थिकः।

भावेसु राययादी सव्वे जीवंमि जो दु जंपेदि।
सोहु असुद्धो उत्तो कम्माणोवाहिसावेक्खो ॥२१॥

भावान् च रागादीन् सर्वेषु जीवेषु यस्तु जल्पति।
स खलु अशुद्ध उक्तः कर्मणामुपाधिसापेक्षः ॥२१॥

उत्पादव्ययसापेक्षोऽशुद्धद्रव्यार्थिकः।

उप्पादवयविमिस्सा सत्ता गहिऊण भणइ तिदयत्तं।
दव्वस्स एयसमये जो हु असुद्धो हवे विदिओ ॥२२॥

उत्पादव्ययविमिश्रां सत्तां गृहीत्वा भणति नितयत्वम्।
द्रव्यस्यैकसमये यो ह्यशुद्धो भवेद्द्वितीयः ॥२२॥

भेदकल्पनासापेक्षोशुद्धद्रव्यार्थिकः।

भेदे सदि संबंधं गुणगुणियाईण कुणइ जो दव्वे।
सो वि असुद्धो दिट्ठो सहिओ सो भेदकप्पेण ॥२३॥

भेदे सति सम्बन्धं गुणगुण्यादीनां करोति यो द्रव्ये।
सोप्यशुद्धो दृष्टः सहितः स भेदकल्पनया ॥ २३ ॥

अन्वयद्रव्यार्थिकः ।

णिस्सेससहावाणं अण्णयरूवेण दव्वदव्वेदि ।
दव्वठवणो हि जो सो अण्णयदव्वत्थिओ भणिओ॥२४॥

निःशेषस्वभावानां अन्वयरूपेण द्रव्यं द्रव्यमिति ।
द्रव्यस्थापना हि यः सोऽन्वयद्रव्यार्थिको भणितः ॥ २४ ॥

स्वद्रव्यादिग्राहको द्रव्यार्थिकः ।

सद्दव्वादिचउक्के संतं दव्वं खु गिह्णए जो हु ।
णियदव्वादिसु गाही सो इयरो होइ विवरीयो ॥२५॥

स्वद्रव्यादिचतुष्के सद्द्रव्यं खलु गृह्णाति यो हि ।
निजद्रव्यादिषु ग्राही स इतरो भवति विपरीतः ॥ २५ ॥

परमभावग्राहको द्रव्यार्थिकः ।

गिह्णइ दव्वसहावं असुद्धसुद्धोपचारपरिचत्तं ।
सो परमभावगाही णायव्वो सिद्धिकामेण ॥ २६ ॥

गृह्णाति द्रव्यस्वभावं अशुद्धशुद्धोपचारपरित्यक्तम् ॥
स परमभावग्राही ज्ञातव्यः सिद्धिकामेन ॥ २६ ॥

अनादिनित्यः पर्यायार्थिकः ।

अकट्टिमा अणिहणा ससिसूराईण पज्जया गिह्णइ ।
जो सो अणाइणिच्चो जिणभणिओ पज्जयत्थिणओ २७

अकृत्रिमाननिधनान् शशिसूर्यादीनां पर्यायान् गृह्णाति ।
यः सोऽनादिनित्यो जिनभणितः पर्यायार्थिको नयः ॥ २७ ॥

सादिनित्यः पर्यायार्थिकः ।

कम्मक्खयादु पत्तो अविणासी जो हु कारणाभावे ।

इदमेवमुच्चरंतो भणइ सो साइणिच्च णओ ॥ २८ ॥
कर्मक्षयात्प्राप्तोऽविनाशी यो हि कारणाभावे ।
इदमेवमुच्चरन्भण्यते स सादिनित्यनयः ॥ २८ ॥

सत्तागौणत्वेनोत्पादव्ययग्राहकः स्वभावानित्यशुद्धपर्यायार्थिकः ।

सत्ता अमुक्खरूवे उप्पादवयं हि गिह्णए जो हु ।
सो दु सहाव अणिच्चो भण्णइ खलु सुद्धपज्जायो ॥ २९
सत्ताऽमुख्यरूपे उत्पादव्ययौ हि गृह्णाति यो हि ।
स तु स्वभावानित्यो भण्यते खलु शुद्धपर्यायः ॥ २९ ॥

सत्तासापेक्षः स्वभावानित्यः अशुद्धः पर्यायार्थिकः ।

जो गहइ एक्कसमए उप्पायवयद्धुवत्तसंजुत्तं ।
सो सब्भाव अणिच्चो असुद्धओ पज्जयत्थीओ ॥३०॥
यो गृह्णाति एकसमये उत्पादव्ययध्रुवत्वसंयुक्तम् ।
स सद्भावानित्योऽशुद्धः पर्यायार्थिकः ॥ ३० ॥

कर्मोपाधिनिरपेक्षः स्वभावानित्यः शुद्धः पर्यायार्थिकः ।

देहीणं पज्जाया सुद्धा सिद्धाण भणइ सारित्था ।
जो इह अणिच्च सुद्धो पज्जयगाही हवे स णओ॥३१॥
देहिनां पर्यायाः शुद्धाः सिद्धानां भणति सदृशाः ।
य इहानित्यः शुद्धः पर्ययग्राही भवेत्स नयः ॥ ३१ ॥

कर्मोपाधिसापेक्षो विभावानित्योशुद्धः पर्यायार्थनयः ।

भणइ अणिच्चाऽसुद्धा चउगइजीवाण पज्जया जो हु ।

होइ विभाव अणिच्चो असुद्धओ पज्जयात्थणओ॥३२॥

भणत्यनित्याशुद्धांश्चतुर्गतिजीवानां पर्यायान्यो हि ।
भवति विभावानित्योऽशुद्धपर्यायार्थिको नयः ॥ ३२ ॥

भूतभाविवर्तमानकालभेदान्नैगमास्त्रिधा ।

णिव्वित्तदव्वकिरिया वट्टणकाले दु जं समाचरणं ।
तं भूयणइगमणयं जह अड णिव्वुइदिणं वीरे ॥३३॥

निर्वृत्तद्रव्यक्रिया वर्तने काले तु यत्समाचरणम् ।
स भूतनैगमनयो यथा अद्य निर्वृतिदिनं वीरस्य ॥ ३३ ॥

पारद्धा जा किरिया पयणविहाणादि कहइ जो सिद्धा
लोए य पुच्छमाणे तं भण्णइ वट्टमाणणयं ॥ ३४ ॥

प्रारब्धा या क्रिया पचनविधानादिः कथयति यः सिद्धाम् ।
लोके च पृच्छ्यमाने स भण्यते वर्तमाननयः ॥ ३४ ॥

णिप्पण्णमिव पयंपदि भाविपयत्थं णरो अणिप्पण्णं ।
अप्पत्थे जह पत्थं भण्णइ सो भावि णइगमोत्ति णओ ३५

निष्पन्नमिव प्रजल्पति भाविपदार्थं नरोऽनिष्पन्नम् ।
अप्रस्थे यथा प्रस्थः भण्यते स भाविनैगम इति नयः ॥३५॥

सामान्यसंग्रहो विशेषसंग्रहश्चेति संग्रहो द्वेधा ।

अवरे परमविरोहे सव्वं अत्थित्ति सुद्धसंगहणो ।
होइ तमेव असुद्धो इगजाइविसेसगहणेण ॥ ३६ ॥

अपरे परमविरोधे सर्वं अस्ति इति शुद्धसंग्रहणं ।
भवति स एवाशुद्धः एकजातिविशेषग्रहणेन ॥ ३७ ॥

सामान्यसङ्ग्रहभेदको व्यवहारो विशेषसङ्ग्रहभेदकश्चेति व्यवहारोऽपि द्वेधा—

जं संगहेण गहियं भेयइ अत्थं असुद्ध सुद्धं वा ।
सो ववहारो दुविहो असुद्धसुद्धत्थभेयकरो ॥३७॥

य: संग्रहेण गृहीतं भिनत्ति अर्थं अशुद्धं शुद्धं वा ।
स व्यवहारो द्विविधोऽशुद्धशुद्धार्थभेदकर: ॥३७॥

सूक्ष्मर्जुसूत्र: स्थूलर्जुसूत्रश्चेत्यृजुसूत्रोऽपि द्विविध: ।

जो एयसमयवट्टी गिह्णइ दव्वे धुवत्तपज्जाओ ।
सो रिउसुत्तो सुहुमो सव्वं पि सद्दं जहा खणियं ॥३८॥

य एकसमयवर्तिनं गृह्णाति द्रव्ये ध्रुवत्वपर्यायम् ।
स ऋजुसूत्र: सूक्ष्म: सर्वमपि सद्यथा क्षणिकम् ॥३८॥

मणुवाइयपज्जाओ मणुसुत्ति सगट्ठिदीसु वट्टंतो ।
जो भणइ तावकालं सो थूलो होइ रिउसुत्तो ॥३९॥

मनुजादिकपर्यायो मनुष्य इति स्वकस्थितिषु वर्तमान: ।
यो भणति तावत्कालं स स्थूलो भवति ऋजुसूत्र: ॥३९॥

शब्दसमभिरूढैवंभूताश्चैकैके उक्ता नयभेदा: ।

जो वट्टणं च मण्णइ एयट्ठे भिण्णलिङ्गमाईणं ।
सो सद्दणओ भणिओ णेओ पुस्साइयाण जहा ॥४०॥

यो वर्तनं च मन्यते एकार्थे भिन्नलिङ्गादीनाम् ।
स शब्दनयो भणित: ज्ञेय: पुष्यादीनां यथा ॥४०॥

अहवा सिद्धे सद्दे कीरइ जं किंपि अत्थववहरणं ।
तं खलु सद्दे विसयं देवो सद्देण जह देवो ॥४१॥

अथवा सिद्ध शब्दं करोति यः किमपि अर्थव्यवहरणम् ।
स खलु शब्दस्य विषयः देवशब्देन यथा देवः ॥४१॥

सद्दारूढो अत्थो अत्थारूढो तहेव पुण सद्दो ।
भणइ इह समभिरूढो जह इंद पुरंदरो सक्क ॥४१॥

शब्दारूढोऽर्थोऽर्थारूढस्तथैव पुनः शब्दः ।
भणति इह समभिरूढो यथा इन्द्रः पुरंदरः शक्रे ॥४२॥

जं जं करेइ कम्मं देही मणवयणकायचिट्ठाहिं ।
तं तं खु णामजुत्तो एवंभूओ हवे स णओ ॥४३॥

यद्यत्कुरुते कर्म देही मनोवचनकायचेष्टातः ।
तत्तत्खलु नामयुक्त एवंभूतो भवेत्स नयः ॥४३॥

पढमतिया दव्वत्थी। पज्जयगाही य इयर जे भणिया।
ते चदु अत्थपहाणा सद्दपहाणा हु तिण्णियरा ॥४४॥

प्रथमत्रिका द्रव्यार्थिकाः पर्यायग्राहिणश्चेतरे ये भणिताः ।
ते चत्वारोऽर्थप्रधानाः शब्दप्रधाना हि त्रय इतरे ॥४४॥

पण्णवणभाविभूदे अत्थे जो सो हु भेयपज्जाओ ।
अह तं एवंभूदो संभवदो मुणह अत्थेसु ॥४५॥

प्रज्ञापनं भाविभूतेऽर्थे यः स हि भेदपर्यायः ।
अथ स एवंभूतः संभवतो मन्यध्वं अर्थेषु ॥४५॥

उपनयभेदाः कथ्यन्ते ।

गुणगुणिपज्जयदव्वे कारयसब्भावदो य दव्वेसु ।
सण्णाईहि य भेयं कुणइ सब्भूयसुद्धियरो ॥४६॥

गुणगुणिपर्ययद्रव्ये कारकसद्भावतश्च द्रव्येषु ।

संज्ञादिभिश्च भेदं करोति सद्भूतशुद्धिकरः ॥४६॥

दव्वाणं खु पएसा बहुगा ववहारदो य इक्केण ।
अण्णेण य णिच्छयदो भणिया का तत्थ खलु हवे जुत्ती ॥४७॥

द्रव्याणां खलु प्रदेशा बहुगा व्यवहारतश्च एकेपाम् ।
अन्येन च निश्चयतो भणिताः का तत्र खलु भवेद्युक्तिः ॥

तदुच्यते ।

व्यवहाराश्रयाचस्तु संख्यातीतप्रदेशवान् ।
अभिन्नात्मैकदेशित्वादेकदेशोऽपि निश्चयात् ॥१॥

अणुगुरुदेहपमाणो उवसंहारप्पसप्पदो चेदा ।
असमुहदो ववहारा णिच्चयणयदो असंखदेसो वा ॥४८॥

अणुगुरुदेहप्रमाणः उपसंहारप्रसर्पतः चेतयिता ।
असमुद्घाताद् व्यवहारात् निश्चयनयतोसंख्यदेशो वा ॥४८॥

एयपदेसे दव्वं णिच्छयदो भेयकप्पणारहिदा ।
संभूएणं बहुगा तस्स य ते भेयकप्पणासहिए ॥४९॥

शुद्धसद्भूतव्यवहारोऽशुद्धसद्भूतव्यवहारः इति सद्भूतोऽपि द्विधा
स्वजातीयासद्भूतव्यवहारो विजातीयासद्भूतव्यवहारः स्वजातीय-
विजातीयासद्भूतव्यवहार इति असद्भूतोऽपि त्रिधा ।

अण्णेसिं अत्त गुणा भणइ असब्भूय तिविहभेदेवि ।
सज्जाइइयरमिस्सो णायव्वो तिविहभेदजुदो ॥५०॥

अन्येपामत्र गुणा भणिता असद्भूतत्रिविधभेदेऽपि ।

स्वजातीय इतरो मिश्रो ज्ञातव्यस्त्रिविधभेदयुतः ॥५०॥

असद्भूतव्यवहारनयभेदान्दर्शयति ।

दव्वगुणपज्जयाणं उवयारं होइ ताण तत्थेव ।
दव्व गुणपज्जया गुणे दवियपज्जया णेया ॥५१॥

द्रव्यगुणपर्यायाणां उपचारो भवति तेषां तत्रैव ।
द्रव्ये गुणपर्यायौ गुणे द्रव्यपर्याया ज्ञेयाः ॥५१॥

पज्जाये दव्वगुणा उवयरियव्वा हु बंधसंजुत्ता ।
संबंधे संसिलेसो णाणीणं णेयमादीहिं ॥५२॥

पर्याये द्रव्यगुणा उपचरितव्या हि बन्धसंयुक्ताः ।
संबन्धे संश्लेषे ज्ञानिनां नैगमादिभिः ॥५२॥

विजातीयद्रव्ये विजातीयद्रव्यारोपणोसद्भूतव्यवहारः ।

एइंदियादिदेहा णिच्चचा जेवि पोग्गले काये ।
ते जो भणेइ जीवो ववहारो सो विजातीओ ॥ ५३ ॥

एकेन्द्रियादिदेहा निश्चिता येऽपि पौद्गले काये ।
ते ये भणिता जीवा व्यवहारः स विजातीयः ॥ ५३ ॥

विजातीयगुणे विजातीयगुणारोपणोऽसद्भूतव्यवहारः—

मुत्तं इह मइणाणं मुत्तिमदव्वेण जणियं जह्मा ।
जइ णहु मुत्तं णाणं ता कह खलियं हि मुत्तेण ॥५४॥

मूर्त्तमिह मतिज्ञानं मूर्तिकद्रव्येण जनितं यस्मात् ।
यदि नहि मूर्तं ज्ञानं तत्कथं स्खलितं हि मूर्तेन ॥ ५४ ॥

स्वजातीयपर्याये स्वजातीयपर्यायारोपणोऽसद्भूतव्यवहारः ।

दट्ठूणं पडिबिंबं भवदि हु तं चेव एस पज्जाओ ।
सज्जाइअसब्भूओ उवयरिओ णिययजातिपज्जाओ ॥५६॥

दृष्ट्वा प्रतिबिम्बं भवति हि स चैव एष पर्यायः ।
स्वजात्यसद्भूतोपचरितो निजजातिपर्यायः ॥५६॥

स्वजातिविजातिद्रव्ये स्वजातिविजातिगुणारोपणोऽसद्भूतव्यवहारः ।

णेयं जीवमजीवं तं पिय णाणं खु तस्स विसयादो ।
जो भणइ एरिसत्थं ववहारो सो असब्भूदो ॥५७॥
ज्ञेयं जीवमजीवं तदपि च ज्ञानं खलु तस्य विषयात् ।
यो भणति ईदृशार्थं व्यवहारः सोऽसद्भूतः ॥५७॥

स्वजातीयद्रव्ये स्वजातीयविभावपर्यायारोपणोऽसद्भूतव्यवहारः-

परमाणु एयदेसी बहुप्पदेसी पयंपदे जो दु ।
सो ववहारो णेओ दव्वे पज्जायउवयारो ॥५८॥
परमाणुरेकदेशी बहुप्रदेशी प्रजल्पति यस्तु ।
स व्यवहारो ज्ञेयः द्रव्ये पर्यायोपचारः ॥५८॥

स्वजातिगुणे स्वजातिद्रव्यारोपणोऽसद्भूतव्यवहारः—

रूवं पि भणइ दव्वं ववहारो अण्णअत्थसंभूदो ।
सेओ जह पासाणो गुणेसु दव्वाण उवयारो ॥५९॥
रूपमपि भणति द्रव्यं व्यवहारोऽन्यार्थसंभूतः ।

श्वेतो यथा पाषाणो गुणेषु द्रव्याणामुपचारः ॥५९॥

स्वजातिगुणे स्वजातिपर्यायारोपणोऽसद्भूतव्यवहारः—

णाणं पि हि पज्जायं परिणममाणं तु गिह्णए जो हु ।
ववहारो खलु जंपइ गुणेसु उवयरियपज्जाओ ॥६०॥
ज्ञानमपि हि पर्यायं परिणममाणं तु गृह्णाति यस्तु ।
व्यवहारः खलु जल्पति गुणेषूपचरितपर्यायः ॥६०॥

स्वजातीयविभावपर्याये स्वजातीयद्रव्यारोपणोऽसद्भूतव्यवहारः—

दट्ठूण थूलखंधो पुग्गलदव्वोत्ति जंपए लोए ।
उवयारो पज्जाए पोग्गलदव्वस्स भणइ ववहारो ॥६१॥
दृष्ट्वा स्थूलस्कन्धं पुद्गलद्रव्यमिति जल्पति लोके ।
उपचारः पर्याये पुद्गलद्रव्यस्य भणति व्यवहारः ॥६१॥

स्वजातीयपर्याये स्वजातीयगुणारोपणोसद्भूतव्यवहारः ।

दट्ठूण देहठाणं वण्णंतो होइ उत्तमं रूवं ।
गुणउवयारो भणिओ पज्जाए णत्थि संदेहो ॥६२॥
दृष्ट्वा देहस्थानं वर्ण्यमानं भवति उत्तमं रूपं ।
गुणोपचारो भणितः पर्याये नास्ति संदेहः ॥६२॥
सद्दत्थपच्चयादो संतो भणिदो जिणेहि ववहारो ।
जस्स ण हवेइ संतो हेऊ दुह्णं पि तस्स कुदो ॥६३॥
शब्दार्थप्रत्ययतः सतो भणितो जिनैर्व्यवहारः ।
यस्य न भवेत्सत् हेतू द्वावपि तस्य कुतः ॥६३॥

चउगइ इह संसारो तस्स य हेऊ सुहासुहं कम्मं ।
जइ तं मिच्छा तो किह संसारो संखमिव तस्समये
॥६४॥

चतुर्गतिरिह संसारस्तस्य च हेतुः शुभाशुभं कर्म ।
यदि तन्मिथ्या तर्हि कथं संसारः सांख्य इव तत्समये ॥६४॥

एइंदियादिदेहा जीवा ववहारदो दु जिणदिट्ठा ।
हिंसादिसु जदि पावं सव्वत्थो किं ण ववहारो ॥६५॥
एकेन्द्रियादिदेहा जीवा व्यवहारतस्तु जिनदृष्टाः ।
हिंसादिषु यदि पापं सर्वत्र किं न व्यवहारः ॥६५॥
बंधे वि मुक्खहेऊ अण्णो ववहारदो य णायव्वा ।
णिच्छयदो पुण जीवो भणिओ खलु सव्वदरसीहिं ॥६६॥
बन्धेऽपि मुख्यहेतुरन्यो व्यवहारतश्च ज्ञातव्यः ।
निश्चयतः पुनर्जीवो भणितः खलु सर्वदर्शिभिः ॥६६॥
जो चेव जीवभावो णिच्छयदो होइ सव्वजीवाणं ।
सो चिय भेदुवयारा जाण फुडं होइ ववहारो ॥६७॥
यश्चैव जीवभावः निश्चयतो भवति सर्वजीवानाम् ।
स चैव भेदोपचारात्स्फुटं भवति व्यवहारः ॥६७॥
भेदुवयारो णियमा मिच्छादिट्ठीण मिच्छरूवं खु ।
सम्मे सम्मो भणिओ तेहि दु बंधो व मुक्खो वा ॥६८॥
भेदोपचारो नियमान्मिथ्यादृष्टीनां मिथ्यारूपः खलु ।
सम्यक्त्वे सम्यक् भणितः तैस्तु बन्धो वा मोक्षो वा ॥६८॥

ण मुणइ वत्थुसहावं अह विवरीयं खु मुणइ णिरवेक्खं ।
तं इह मिच्छाणाणं विवरीयं सम्मरूवं खु ॥६९॥

न मिनोति वस्तुस्वभावं अथ विपरीतं खलु मिनोति निरपेक्षम् ।
तदिह मिथ्याज्ञानं विपरीतं सम्यग्रूपं तु ॥६९॥

णो उवयारं कीरइ णाणस्स हु दंसणस्स वा णेए ।
किह णिच्छित्तीणाणं अण्णेसिं होइ णियमेण ॥७०॥

नो उपचारं कृत्वा ज्ञानस्य हि दर्शनस्य वा ज्ञेये ।
कथं निश्चितिज्ञानमन्येषां भवति नियमेन ॥७०॥

इति असद्भूतव्यवहारः ।

उवयारा उवयारं सच्चासच्चेसु उहयअत्थेसु ।
सज्जाइइयरमिस्सो उवयरिओ कुणइ ववहारो ॥७१॥

उपचारादुपचारं सत्यासत्येषु उभयार्थेषु ।
सजातीतरमिश्रेषु उपचरितः करोति व्यवहारः ॥७१॥

स्वजातीयोपचरितासद्भूतव्यवहारो विजातीयोपचरितासद्भूत-
व्यवहारः सजातीयविजातीयोपचरितासद्भूतव्यवहारः
इति उपचरितासद्भूतोपि त्रेधा ।

देसवई देसत्थो अत्थवणिज्जो तहेव जंपंतो ।
मे देसं मे दव्वं सच्चासच्चंपि उभयत्थं ॥७२॥

देशपतिः देशस्थः अर्थपतिर्यः तथैव जल्पन् ।
मम देशो मम द्रव्यं सत्यासत्यमपि उभयार्थम् ॥७२॥

स्वजातीयद्रव्ये स्वजातीयद्रव्यारोपणमुपचरिता-
सद्भूतव्यवहारः—

पुत्ताइबंधुवग्गं अहं च मम संपयाइ जंपंतो ।
उवयारासब्भूओ सजाइदव्वेसु णायव्वो ॥ ७३ ॥
पुत्रादिबंधुवर्गः अहं च मम सम्पदादि जल्पन् ।
उपचारासद्भूतः स्वजातिद्रव्येषु ज्ञातव्यः ॥ ७३ ॥

विजातीयद्रव्ये विजातीयद्रव्यारोपण उपचरितासद्भूत-
व्यवहारः—

आहरणहेमरयणं वत्थादीया ममत्ति जंपंतो ।
उवयारअसब्भूओ विजादिदव्वेसु णायव्वो ॥ ७४ ॥
आभरणहेमरत्नानि वस्त्रादीनि ममेति जल्पन् ।
उपचारासद्भूतो विजातिद्रव्येषु ज्ञातव्यः ॥ ७४ ॥

स्वजातिविजातिद्रव्ये स्वजातिद्रव्यारोपण उपचरितासद्भूत-
व्यवहारः—

देसं च रज्ज दुग्गं एवं जो चेव भणइ मम सव्वं ।
उहयत्थे उपयरिओ होइ असब्भूयववहारो ॥ ७५ ॥
देशश्च राज्यं दुर्गं एवं यश्चैव भणति मम सर्वम् ।
उभयार्थे उपचरितो भवत्यसद्भूतव्यवहारः ॥ ७५ ॥

एयंते णिरवेक्खे णो सिज्झइ विविहभावगं दव्वं ।
तं तह वयणेयंते इदि बुज्झह सियअणेयंतं ॥ ७६ ॥
एकान्ते निरपेक्षे नो सिद्ध्यति विविधभावगं द्रव्यम् ।
तत्तथा वचनेऽनेकान्ते इति बुध्यत स्यादनेकान्तम् ॥ ७६ ॥

ववहारादो बंधो मोक्खो जह्मा सहावसंजुत्तो ।
तह्मा कर तं गउणं सहावमाराहणाकाले ॥७७॥
व्यवहारात् बन्धो मोक्षो यस्मात्स्वभावसंयुक्तः ।
तस्मात्कुरु तं गौणं स्वभावमाराधनाकाले ॥७७॥
जह रससिद्धो वाई हेमं काऊण भुंजये भोगं ।
तह णय सिद्धो जोई अप्पा अणुहवउ अणवरयं ॥७८॥
यथा रससिद्धो वैद्यो हेम कृत्वा भुनक्ति भोगम् ।
तथा नयसिद्धो योगी आत्मानमनुभवत्वनवरतम् ॥७८॥
सोक्खं च परमसोक्खं जीवे चारित्तसंजुदे दिट्ठं ।
वट्टइ तं जइवग्गे अणवरयं भावणालीणे ॥७९॥
सौख्यं च परमसौख्यं जीवे चारित्रसंयुते दृष्टम् ।
वर्तते तद्यतिवर्गे अनवरतं भावनालीने ॥७९॥

विभावस्वभावाभावत्वेन भावना-

रायाइभावकम्मा मज्झ सहावा ण कम्मजा जह्मा ।
जो संवेयणगाही सोहं णादा हवे आदा ॥८०॥
रागादिभावकर्माणि मम स्वभावा न कर्मजा यस्मात् ।
यः संवेदनग्राही सोहं ज्ञाता भवाम्यात्मा ॥८०॥

सामान्यगुणप्रधानत्वेन भावना-

परभावादो सुण्णो संपुण्णो जो हु होइ णियभावे ।
जो संवेयणगाही सोहं णादा हवे आदा ॥८१॥
परभावतः शून्यः संपूर्णो यो हि भवति निजभावे ।
यः संवेदनग्राही सोऽहं ज्ञाता भवाम्यात्मा ॥८१॥

विपक्षद्रव्यस्वभावाभावत्वेन भावना—

जडसब्भावो णहु मे जह्मा तं जाण भिण्णजडदव्वे ।
जो संवेयणगाही सोहं णादा हवे आदा ॥८२॥
जडस्वभावो न मे यस्मात्तं जानीहि भिन्नजडद्रव्ये ।
यः संवेदनग्राही सोहं ज्ञाता भवाम्यात्मा ॥८२॥

विशेषगुणप्रधानत्वेन भावना—

मज्झ सहावं णाणं दंसण चरणं न किंपि आवरणं ।
जो संवेयणगाही सोहं णादा हवे आदा ॥८३॥
मम स्वभावः ज्ञानं दर्शनं चरणं न किमपि आवरणम् ।
यः संवेदनग्राही सोहं ज्ञाता भवाम्यात्मा ॥८३॥

स्वस्वभावप्रधानत्वेन भावना—

भावचउक्कं चत्तं संपत्तो परमभावसब्भावं ।
जो संवेयणगाही सोहं णादा हवे आदा ॥८४॥
भावचतुष्कं त्यक्त्वा सम्प्राप्तः परमभावसद्भावम् ।
यः संवेदनग्राही सोहं ज्ञाता भवाम्यात्मा ॥८४॥
णियपरमणाणसंजणिय जोयिणो चारुचेयणाणंदं ।
जइया तइया कीलइ अप्पा अवियप्पभावेण ॥८५॥
निजपरमज्ञानसंजनितं योगिनः चारुचेतनानन्दम् ।
यदा तदा आक्रीडति आत्मा अविकल्पभावेन ॥८५॥
लवणं व एस भणियं णयचक्कं सयलसत्थसुद्धियरं ।
सम्माविसुयं मिच्छा जीवाणं सुणयमग्गरहियाणं ॥८६॥
लवणमिव एतद्भणितं नयचक्रं सकलशास्त्रशुद्धिकरम् ।

सम्यग्विश्रुतं मिथ्या जीवानां सुनयमार्गरहितानाम् ॥८६॥

जइ इच्छह उत्तरिदुं अण्णाणमहोवहिं सुलीलाए ।
तो णादुं कुणह मइं णयचक्के दुणयतिमिरमत्तण्डे ॥८७॥

यदि इच्छथ उत्तरितुं अज्ञानमहोदधिं सुलीलया ।
तर्हि ज्ञातुं कुरुत मतिं नयचक्रे दुर्णयतिमिरमार्तण्डे ॥८७॥

॥ इति लघुनयचक्रं देवसेनकृतं समाप्तम् ॥

॥ ॐ ॥

श्रीकुन्दकुन्दाचार्यकृतशास्त्राणां सारार्थं परिगृह्य स्वपरोपकाराय द्रव्यस्वभावप्रकाशकं नयचक्रं मोक्षमार्गं कुर्वन् ग्रन्थकर्ता निर्विघ्नतया शास्त्रपरिसमाप्त्यादिकं शिष्टाचारप्रतिपालनं पुण्यावाप्तिं नास्तिकतापरिहारं फलमभिलषन् शास्त्रादौ इष्टदेवताविशेषं नमस्कुर्वन्नाह ' दव्वे ' ति.

दव्वा विस्ससहावा लोयायासे सुसंठिया जेहिं ।
दिट्ठा तियालविसया वंदेहं ते जिणे सिद्धे ॥ १ ॥

द्रव्याणि विश्वस्वभावानि लोकाकाशे संस्थितानि यैः ।
दृष्टानि त्रिकालविषयाणि वन्देऽहं तान् जिनान्सिद्धान् ॥

इष्टदेवताविशेषं नमस्कृत्य व्याख्येयप्रतिज्ञानिर्देशार्थमाह ' जं जमिति '—

जं जं जिणेहि दिट्ठं जह दिट्ठं सव्वदव्वसब्भावं ।
पुव्वावरअविरुद्धं तं तह संखेवदो वोच्छं ॥ २ ॥

यो यो जिनैर्दृष्टो यथा दृष्टः सर्वद्रव्यस्वभावः ।
पूर्वापराविरुद्धः तं तथा संक्षेपतो वक्ष्ये ॥

स्वभावस्वभाविनोरेकत्वनिर्णीत्युपचारं व्याचष्टे ' जीवेति '

जीवा पुग्गलकाला धम्माधम्मा तहेव आयासं ।
णियणियसहावजुत्ता दव्वा णयपमाणेहिं ॥ ३ ॥

जीवाः पुद्गलकायौ धर्माधर्मौ तथैवाकाशम् ।
निजनिजस्वभावयुक्ता द्रव्या नयप्रमाणैः ॥

स्वभावस्य नामान्तरं ब्रूते ' तच्चमित्यादि '—

तच्चं तह परमट्ठं दव्वसहावं तहेव परमपरं ।

धेयं सुद्धं परमं एयट्ठा हुंति अभिहाणा ॥ ४ ॥

तत्त्व तथा परमार्थः द्रव्यस्वभावस्तथैव परमपरम् ।
ध्येयं शुद्ध परमं एकार्थानि भवन्त्यभिधानानि ॥

स्वभावस्वभाविनोर्व्याप्तिं दर्शयति—

एदेहिं तिविहलोगं णिप्पण्णं खलु णहेण तस्सलोयम् ।
तेणेदे परमट्ठा भणिया सब्भावदरसीहिं ॥ ५ ॥
ते पुण कारणभूदा लोयं कज्जं वियाण णिच्छयदो ।
अण्णो कोवि ण भणिओ तेसिं इह कारणं कज्जं ॥६॥

एतैस्त्रिविधो लोको निष्पन्नः खलु नभसा स अलोकः ।
तेनैते परमार्था भणिताः स्वभावदर्शिभिः ॥
ते पुनः कारणभूता लोकं कार्यं विजानीहि निश्चयतः ।
अन्यः कोपि न भणितस्तेपामिह कारणं कार्यम् ॥

एकक्षेत्रनिवासित्वेन संकरादिदोषपरिहारमाह—

अवरोप्परं विमिस्सा तह अण्णोण्णावगासदो णिच्चं ।
संता वि एयखेत्ते ण परसहावेहि गच्छंति ॥ ७ ॥

परस्परं विमिश्रास्तथाऽन्योऽन्यावकाशतो नित्यम् ।
सन्तोऽप्येकक्षेत्रे न परस्वभावैर्गच्छन्ति ॥

इति पीठिकानिर्देशः ।

अथ तस्या विशेषव्याख्यानार्थमधिकारारम्भः—

गुणपज्जाया दवियं काया पंचत्थि सत्त तच्चाणि ।
अण्णेवि नव पयत्था पमाण णय तह य णिक्खेवं ॥८॥
दंसणणाणचरित्ता कमसो उवयारभेदइदरेहिं ।
दव्वसहावपयासे अहियारा बारसवियप्पा ॥९॥

गुणपर्याया द्रव्यं कायाः पंचास्ति सप्त तत्त्वानि ।
अन्येऽपि च नव पदार्थाः प्रमाणं नयास्तथा च निक्षेपाः ॥
दर्शनज्ञानचारित्राणि क्रमश उपचारभेदेतरैः ।
द्रव्यस्वभावप्रकाशे अधिकारा द्वादशविकल्पाः ॥

अथ सूत्रनिर्देशस्तत्राधिकारत्रयाणां प्रयोजनं निर्दिशति—

णायव्वं दवियाणं लक्खणसंसिद्धिहेउगुणणियरं ।
तह पज्जायसहावं एयंतविणासणट्ठा वि ॥१०॥

ज्ञातव्यं द्रव्याणां लक्षणसंसिद्धिहेतुगुणनिकरम् ।
तथा पर्यायस्वभावः एकान्तविनाशनार्थः अपि ॥

गुणस्य स्वरूपं भेदं च निरूपयति—

दव्वाणं सहभूदा (१) सामण्णविसेसदो (२) गुणा णेया ।
सव्वेसिं सामण्णा दह भणिया सोलस विसेसा ॥ ११ ॥

द्रव्याणां सहभूताः सामान्यविशेषतो गुणा ज्ञेयाः ।
सर्वेषां सामान्या दश भणिताः षोडश विशेषाः ॥

---

१ 'द्रव्याणां सहभूता' इतिपदेन द्रव्यसहभाविनो गुणा इति गुणलक्षणं कथितम् ।

२ 'सामण्णविसेसदो' इत्यनेन गुणानां द्वौ भेदौ प्ररूपितौ ।

दशसामान्यगुणानां नामानि आह–

अत्थित्तं वत्थुत्तं दव्वत्त पमेयत्त अगुरुलहुगुत्तं ।
देसत्त चेदणिदरं मुत्तममुत्तं वियाणेह ॥ १२ ॥

अस्तित्वं वस्तुत्वं द्रव्यत्वं प्रमेयत्वमगुरुलघुकत्वम् ।
देशत्वं चेतनमितरद् मूर्तममूर्त्तं विजानीहि ॥

षोडशविशेषगुणानां नामान्याह–

णाणं दंसण सुह सत्तिरूवरस गंध फास गमणठिदी(१)
वट्टणगाहणहेउं मुत्तममुत्तं खु चेदणिदरं च ॥ १३ ॥

ज्ञानं दर्शनसुखशक्तिरूपरसगन्धस्पर्शगमनस्थिति ।
वर्तनावगाहनहेतुं मूर्तममूर्तं खलु चेतनमितरच्च ॥

ज्ञानादिविशेषगुणानां संभवद्भेदानाह–

अट्ठचदु णाणदंसणभेया सत्तिसुहस्स इह दो दो ।
वण्णरस पंच गंधा दो फासा अट्ठ णायव्वा ॥ १४ ॥

अष्ट चत्वारो ज्ञानदर्शनभेदाः शक्ति (२) सुखस्येह[३] द्वौ द्वौ।
वर्णरसाः पंच गन्धौ द्वौ स्पर्शा अष्ट ज्ञातव्याः ॥

षड्द्रव्येषु प्रत्येकं सम्भवत्सामान्यविशेषगुणान्प्ररूपयति–

एक्केक्के अट्ठट्ठा सामण्णा हुंति सव्वदव्वाणं ।

---

१ पूर्वं गमनस्थितिवर्तनावगाहनपदानां परस्परं द्वन्द्वे हेतुपदेन सह षष्ठीतत्पुरुषेच कृते पश्चात्सुखादिपदाना समाहारः (समाहारे नपुंसकमेकवच्च) इति नपुंसकलिङ्गान्तैकवचनप्रयोगः।

२ क्षायोपशमिकी शक्तिः क्षायिकी चेति शक्तेर्द्वौ भेदौ ।

३ इन्द्रियजमतीन्द्रियं चेति सुखस्य द्वौ भेदौ ।

छवि जीवपोग्गलाणं इयराण वि सेस तितिभेदा ।१५।

एकैकस्मिन्नष्टाष्टौ (१) सामान्या भवंति सर्वद्रव्याणाम् ।
षडेव (२) जीवपुद्गलयोः इतरेषामपि शेषास्त्रित्रिभेदाः ॥

चेतनादिगुणानां * पुनरुक्तिदोषपरिहारमाह-

चेदणमचेदणा तह मुत्तममुत्तावि चरिम जे भणिया ।
सामण्ण सजाईणं ते वि विसेसा विजाईणं ॥ १६ ॥

चेतनमचेतना तथा मूर्तेऽमूर्तेऽपि चरमा ये भणिताः ।
सामान्याः स्वजातीनां तेऽपि विशेषा विजातीनाम् ॥

इति गुणाधिकारः ।

---

१ कौ द्वौ द्वौ गुणौ हीनौ ?— जीवद्रव्येऽचेतनत्वं मूर्तत्वं च नास्ति, पुद्गलद्रव्ये चेतनत्वममूर्तत्वंच नास्ति । धर्माधर्माकाशकालद्रव्येषु चेतनत्वममूर्तत्वच नास्ति । एवं द्विद्विगुणवर्जिते अष्टौ अष्टौ सामान्यगुणाः प्रत्येकद्रव्ये भवन्ति ।

२ जीवस्य ज्ञानदर्शनसुखवीर्याणि चेतनत्वममूर्तत्वमिति षट्, पुद्गलस्य स्पर्शरसगंधवर्णा मूर्तत्वमचेतनत्वमिति षट्, इतरेषां धर्माधर्माकाशकालानां प्रत्येकं त्रयो गुणाः । तत्र धर्मद्रव्ये गतिहेतुत्वमचेतनत्वममूर्तत्वमिति त्रयो गुणाः । अधर्मद्रव्ये स्थितिहेतुत्वममूर्तत्वमचेतनत्वमिति त्रयः । आकाशद्रव्ये अवगाहनहेतुत्वममूर्तत्वमचेतनत्वमेते । कालद्रव्ये वर्तनाहेतुत्वमचेतनत्वममूर्तत्वमिति विशेषगुणाः ।

* सामान्यगुणेषु विशेषगुणेषु च पाठात्पौनरुक्त्यम् ।

अथ पर्यायस्य लक्षणं भेदं च दर्शयति--

सामण्ण विसेसा वि य जे थक्का दविय एयमासेज्जा ॥
परिणाम अह वियारं ताणं तं पज्जयं दुविहं ॥ १७ ॥

सामान्य विशेषा अपि च ये स्थिता द्रव्यमेकमासाद्य ।
परिणामोऽथ विकारस्तेषां स पर्यायो द्विविधः ॥

पर्यायद्वैविध्यं निदर्श्य जीवादिद्रव्येषु कस्कः पर्यायो भवतीत्याह-

सब्भावं खु विहावं दव्वाणं पज्जयं जिणुद्दिट्ठं ॥
सव्वेसिं च सहावं विब्भावं जीवपुग्गलाणं च ॥ १८ ॥

स्वभावः खलु विभावो द्रव्याणां पर्यायो जिनोद्दिष्टः ।
सर्वेषां च स्वभावः विभावो जीवपुद्गलयोः ॥

द्रव्यगुणयोः स्वभावविभावापेक्षया पर्यायाणां चातुर्विध्यं निरूपयति---

दव्वगुणाण सहावा पज्जायं तह विहावदो णेयं ।
जीवे जीवसहावा ते वि विहावा हु कम्मकदा ॥ १९॥

द्रव्यगुणयोः स्वभावात्पर्यायस्तथा विभावतो ज्ञेयः ।
जीवे जीवस्वभावाः तेऽपि विभावा हि कर्मकृताः ॥

उक्तं चान्यत्र ग्रन्थे-

पुग्गलदव्वे जो पुण विब्भाओ कालपेरिओ होदि ।
सो णिद्धरुक्खसहिदो बंधो खलु होइ तस्सेव ॥२०॥

पुद्गलद्रव्ये यः पुनः विभावः कालप्रेरितो भवति ।
सः स्निग्धरूक्षसहितो बन्धः खलु तस्यैव ॥

द्रव्यस्वभावपर्यायान्संदर्शयति-

दव्वाणं खु पयेसा जे जे ससहाव संठिया लोए ।

ते ते पुण पज्जाया जाण तुमं दविण सब्भावं ॥२१॥
द्रव्याणां खलु प्रदेशा ये ये स्वस्वभावसंस्थिता लोके ।
ते ते पुनः पर्याया जानीहि त्वं द्रव्याणां स्वभावान् ॥

गुणस्वभावपर्यायान्संदर्शयति—

अगुरुलहुगा अणंता समयं समयं समुब्भवा जे वि ।
दव्वाणं ते भणिया सहावगुणपज्जया जाण ॥ २२ ॥
अगुरुलघुका अनन्ताः समयं समयं समुद्भवान्ति येऽपि ।
द्रव्याणां ते भणिताः स्वभावगुणपर्यायाः जानीहि ॥

जीवद्रव्यविभावपर्यायान्निर्दिशति—

जं चदुगदिदेहीणं देहायारं पदेसपरिमाणं ।
अह विग्गहगइजीवे तं दव्वविहावपज्जायं ॥२३॥
यश्चतुर्गतिदेहिनां देहाकारः प्रदेशपरिमाणः ।
अथ विग्रहगतिजीवे स द्रव्यविभावपर्यायः ॥

जीवगुणविभावपर्यायान्निदर्शयति—

मदिसुदओहीमणपज्जयं च अण्णाण तिण्णि जे भणिया ।
एवं जीवस्स इमे विहावगुणपज्जया सव्वे ॥२४॥
मतिश्रुतावधिमनःपर्यया अज्ञानानि त्रीणिच ये भणिताः ।
एवं जीवस्येमे विभावगुणपर्यायाः सर्वे ॥

जीवद्रव्यस्वभावपर्यायान्प्रदर्शयति—

देहायारपएसा जे थक्का उहयकम्मणिम्मुक्का ।
जीवस्स णिच्चला खलु ते सुद्धा दव्वपज्जाया ॥२५॥
देहाकारप्रदेशा ये स्थिता उभयकर्मनिर्मुक्ताः ।

जीवस्य निश्चलाः खलु ते शुद्धा द्रव्यपर्यायाः ॥२५॥

जीवगुणस्वभावपर्यायान्निदर्शयति—

णाणं दंसण सुह वीरियं च जं उहयकम्मपरिहीणं ।
तं सुद्धं जाण तुमं जीवे गुणपज्जयं सव्वं ॥२६॥

ज्ञानं दर्शनं सुखं वीर्यं च यदुभयकर्मपरिहीणम् ।
तं शुद्धं जानीहि त्वं जीवगुणपर्यायं सर्वम् ॥२७॥

सम्प्रति स्वभावविभावपर्यायप्रकरणे किंचित्पौद्गलिकपरिणामं स्निग्धरूक्षत्वादिबन्धमाह—

मुत्ते परिणामादो परिणामो णिद्धरुक्खगुणरूवो ।
एउत्तरमेगादी वड्ढदि अवरादु उक्कस्सं ॥२७॥

मूर्ते परिणामात्परिणामः स्निग्धरूक्षगुणरूपः ।
एकोत्तरमेकादि वर्धते अवरात्तूत्कृष्टम् ॥२७॥

पुद्गलानां परस्परं बन्धकस्वरूपमाह—

णिद्धादो णिद्धेण तहेव रुक्खेण सरिस विसमं वा ।
वज्झदि दोगुणअहिओ परमाणु जहण्णगुणरहिओ ॥२८॥

स्निग्धतः स्निग्धेन तथैव रूक्षेण सदृशे विषमे वा ।
बध्नाति द्विगुणाधिकः परमाणुर्जघन्यगुणरहितः ॥

तथा सति---

संखाऽसंखाऽणंता बादरसुहुमा य हुंति ते खंधा ।
परिणमिदो बहुभेयो पुढवीआदीहि णायव्वा ॥२९॥

संख्याऽसंख्यानंता बादरसूक्ष्माश्च ते भवंति स्कन्धाः ।
परिणता बहुभेदाः पृथिव्यादिभिर्ज्ञातव्याः ॥

पुद्गलद्रव्यस्वभावपर्यायान्प्ररूपयति—

जो खलु अणाइणिहणो कारणरूवो हु कज्जरूवो वा ।
परमाणु पोग्गलाणं सो दव्वसहाव पज्जाओ ॥ ३० ॥

यः खलु अनादिनिधनः कारणरूपो हि कार्यरूपो वा ।
परमाणुः पुद्गलानां स द्रव्यस्वभावः पर्यायः ॥

पुद्गलगुणस्वभावपर्यायान् निदर्शयति—

रूवरसगंधफासा जे थक्का तेसु अणुदव्वेसु ।
ते च्चेव पोग्गलाणं सहावगुणपज्जया णेया ॥ ३१ ॥

रूपरसगंधस्पर्शा ये स्थितास्तेष्वणुकद्रव्येषु ।
ते चैव पुद्गलानां स्वभावगुणपर्यया ज्ञेयाः ॥

पुद्गलद्रव्यविभावपर्यायान्निरूपयति—

पुढवी जलं च छाया चउरिंदियविसयकम्मपरमाणु ।
अइथूलथूल थूलं सुहमं सुहमं च अइसुहमं ॥ ३२ ॥

पृथिवी जलं च छाया चतुरिंद्रियविषयः कर्मपरमाणुः ।
अतिस्थूलस्थूलः स्थूलः सूक्ष्मः सूक्ष्मश्चातिसूक्ष्मः ॥

जे संखाई खंधा परिणमिआ दुअणुआदिखंधेहिं ।
ते चिय दव्वविहावा जाण तुमं पोग्गलाणं च ॥३३॥

ये संख्यादिस्कन्धाः परिणमिता द्व्यणुकादिस्कन्धैः ।
ते चैव द्रव्यविभावा जानीहि त्वं पुद्गलानां च ॥

पुद्गलगुणविभावपर्यायान्संदर्शयति—

रूपाइय जे उत्ता जे दिट्ठा दुअणुआइखंधम्मि ।
ते पुग्गलाण भणिया विहावगुणपज्जया सव्वे ३४

रूपादिका ये उक्ता ये दृष्टा द्व्यणुकादिस्कन्धे ।
ते पुद्गलानां भणिता विभावगुणपर्यया: सर्व्वे ॥

धर्माधर्माकाशकालानां स्वभावद्रव्यगुणपर्ययानाह—

गदिठिदिवट्टणगहणा धम्माधम्मेसु गगणकालेसु ।
गुणसब्भावो पज्जय दवियसहावो दु पुव्वुत्तो ॥३५॥

गतिस्थितिवर्तनावगाहनानि धर्माधर्मयोर्गगनकालयो: ।
गुणस्वभाव: पर्ययो द्रव्यस्वभावस्तु पूर्वोक्तः ॥

इति पर्यायाधिकारः ।

अथ द्रव्यस्य व्युत्पत्तिपूर्वकत्वेन लक्षणत्रयमाह---

दवदि दविस्सदि दविदं जं सब्भावेहि विविहपज्जाए ।
तं णह जीवो पोग्गल धम्मा धम्मं च कालं च ॥३६॥

द्रवति द्रोष्यति द्रुतं यत्स्वभावैर्विविधपर्यायैः ॥
तन्नभो जीवः पुद्गलं धर्मोऽधर्मश्च कालश्च ॥

प्रकारान्तरेण द्रव्यलक्षणं आचष्टे--

तिक्काले जं सत्तं वट्टदि उप्पायवयधुवत्तेहिं ।
गुणपज्जायसहावं अणाइसिद्धं खु तं हवे दव्वं ॥३७॥

त्रिकाले यत्सत्त्वं वर्तते उत्पादव्ययध्रुवत्वैः ।
गुणपर्यायस्वभावं अनादिसिद्धं खलु तद्भवेद् द्रव्यम् ॥

सद्द्रव्यलक्षणत्रयाणां परस्परमविनाभावित्वं भेदाभेदं च प्राहुः—

जह्मा एक्कसहावं तह्मा तदिदयदोसहावं खु ।
जह्मा तिदयसहावं तह्मा दोएक्कसब्भावं ॥ ३८ ॥

दोसब्भावं जह्मा तह्मा तिण्णेक्क होइ सब्भावं ॥
दव्वत्थिएण एक्कं भिण्णं ववहारदो तिदयं ॥ ३९ ॥
यस्मादेकस्वभावं तस्मात्तत्त्रितयाद्विस्वभावं खलु ।
यस्मात् त्रितयस्वभावं तस्माद्ध्येकस्वभावम् ॥
द्विस्वभावं यस्मात्तस्मात् ह्येकं भवति स्वभावः ।
द्रव्यार्थिकेनैकं भिन्नं व्यवहारात् त्रितयम् ॥

निरपेक्षैकान्तलक्षणं निराकृत्य तस्यैव दोषं दर्शयति-

जत्थ ण अविणाभावो तिह्णं दोसाण संभवो तत्थ ।
अह उवयारा तं इह किह उवयारा हवे णियमो ॥४०॥
यत्राविनाभावो न त्रयाणां दोषाणां संभवस्तत्र ।
अथोपचारात्स इह कथमुपचाराद्भवेन्नियमः ॥

निश्चयेन न कस्यचिदुत्पादो विनाशो वेति दर्शयति---

ण समुब्भवइ ण णस्सइ दव्वं सत्तं वियाण णिच्छयदो।
उप्पादवयधुवेहिं तस्स य ते हुंति पज्जाया ॥ ४१ ॥
न समुद्भवति न नश्यति द्रव्यं सत्वं विजानीहि निश्चयतः ।
उत्पादव्ययध्रौव्यैस्तस्य च ते भवंति पर्यायाः ।

द्रव्यगुणपर्यायाणामभेदमाह—

गुणपज्जयदो दव्वं दव्वादो ण गुणपज्जया भिण्णा ।
जह्मा तह्मा भणियं दव्वं गुणपज्जयमणण्णं ॥४२॥
गुणपर्ययतो द्रव्यं द्रव्यतो न गुणपर्यया भिन्नाः ।
यस्मात्तस्माद्भणितं द्रव्यं गुणपर्ययाभ्यामनन्यत् ॥

द्रव्यस्वरूपं निरूपयति---

ण विणासियं ण [illegible] हु भेयं णो य भेयणाभावं।
ण विसत्तं [१] सव्वगयं द[illegible] णो इक्कसब्भावं ॥४३॥
न विनाशिकं न नित्यं न हि भिन्नं नो च भेदनाभावम् ।
नापि सत्व सर्वगतं द्रव्यं [illegible] एकस्वभावम् ॥

व्यतिरेकमुखेन द्रव्यमुपयुक्तविशेषण[illegible] साधयति तत्र पूर्वं सतो
विनाशेऽसतश्चोत्पत्तौ [illegible]---

संतं इह जइ णासइ किह तस्स पुण[illegible]मिदि णाणं
अह व असंतं होइ हु दुमरहिदं [illegible]पुप्फम् ॥४४॥
सदिह यदि नश्यति कथं तस्य पुनरपि सोयमिति ज्ञानम् ।
अथवा असद्भवति हि द्रुमरहितं किन्न फलपुष्पम् ॥

ननु वासनातः सोयमिति ज्ञानमिति चेदुत्तरं पठति---

अहवा वासणदो यं पडिअहिणाणे वियप्पविण्णाणं ।
ता सा पंचह भिण्णा खंधाणं वासणा णिच्चं ॥४५॥
अथवा वासनात इदं प्रत्यभिज्ञाने विकल्पविज्ञानम् ।
तर्हि सा पंचभ्यो भिन्ना स्कन्धानां वासना नित्या ॥

अधिकं चोक्तदूषणं (क्षणिकपक्षे)--

" प्रत्यभिज्ञा पुनर्दानफलं भोगोऽर्जितैनसाम् ।
बंधमोक्षादिकं सर्वं क्षणभंगाद्विरुध्यते ॥१॥ " इति ।

नित्यपक्षे दूषणमाह---

जो णिच्चमेव मण्णदि तस्स ण किरिया हु अत्थकारित्तं ।
ण हु तं वत्थू भणियं जं रहियं अत्थकिरियाहिं ॥४६॥
यो नित्यमेव मन्यते तस्य न क्रिया ह्यर्थकारित्वम् ।

न हि तद्वस्तु भणित यद्रहितं (१) अर्थक्रियाभिः ॥४६॥

दूषणान्तरमाह---

णिच्चे दव्वे गमणट्ठाणं पुह किह सुहासुहा किरिया ।
अह उवयारा किरिया कह उवयारो हवे णिच्चे ॥४७॥

नित्ये द्रव्ये गमनं स्थानं पुनः कथं शुभाशुभा क्रिया ।
अथ उपचारात्क्रिया कथमुपचारो भवेन्नित्ये ॥

भेदपक्षे दूषणमाह---

णिच्चं गुणगुणिभेये दव्वाभावं (२) अणंतियं अहवा ।
अणवत्था समवाए किह एयत्तं पसाहेदि ॥ ४८ ॥

नित्यं गुणगुणिभेदे द्रव्याभावोऽनंतिकोऽथवा ।
अनवस्था समवाये कथमेकत्वं प्रसाधयति ॥

---

१ विगता सत्ता यस्मात्तद्विसत्त्वं, असदित्यर्थः ' णावि सव्वं ' तस्य संस्कृते 'नापि सर्वं' । इति ११ तमपत्रपाठः ।

१ क्षणिकवादिनो हि रूपं, वेदना, विज्ञानं, संस्कारः, संज्ञा इति पञ्च स्कन्धा मन्यन्ते ।

२ यदि सर्वथा गुणगुणिनोर्भेदस्तर्हि सर्वगुणेभ्यो व्यतिरिच्य नहि किंचिद् द्रव्यमिति द्रव्याभावः । गुणा अपि द्रव्यं विहाय न निराधारास्तिष्ठन्ति इति गुणाभावः । समवायात्तयोरैक्ये समवायोऽपि ताभ्यां भिन्नोऽभिन्नो वा, भिन्नश्चेत्कथं तयोरेव नान्येषामिति । समवायांतरादिति चेत् सोऽपि भिन्नोऽभिन्नो वेत्याद्यनवस्था भेदपक्षेऽवश्योद्भव्या । सत्यां तस्यां कथमेकत्वं समवायः प्रसाधयेत् ।

अभेदपक्षे दूषणमाह—

जाणादोऽवि य भिण्णं ताणं पि य जुत्तिवज्जियं सुत्तं।
णहु तं तच्चं परमं जुत्तीदो जं ण इह सिद्धं ॥ ४९ ॥

जानन्नऽपि च भिन्नं तेषामपि च युक्तिवर्जितं (१) सूत्रम्।
नहि तत्तत्वं परमं युक्तितो यन्नेह सिद्धम् ॥

नहि किंचित्सदिति शून्यपक्षे दूषणमाह—

सत्तं जो णहु मण्णइ पच्चक्खविरोहियं हि तस्समयं।
णो णेयं णहि णाणं ण संसयं णिच्छयं जह्मा ॥ ५० ॥

सत्त्वं यो न हि मन्यते प्रत्यक्षविरोधितो हि तत्समयः।
नो ज्ञेयं नहि ज्ञानं न संशयो निश्चयो यस्मात् ॥

सर्वं सर्वत्र विद्यते इति सर्वगतत्वपक्षे दूषणमाह—

सव्वं जइ सव्वगयं(२)विज्जदि इह अत्थि कोइ ण दरिद्दी।
सेवावाणिज्जकज्जं ण कारणं किं पि कस्सेव ॥ ५१ ॥

---

१ ये हि युक्त्या गुणगुण्यादिकं भिन्नमनुभवंतोऽपि सूत्रे तु एषामभेदः प्रतिपादित इति वर्णयन्ति तेषां सूत्रं युक्तिवर्जितं ज्ञेयम्। यदिह युक्तितः प्रत्यक्षादिप्रमाणैर्न सिद्धं तन्न परमतत्त्वमिति निश्चयम्।

२ सर्वं यदि सर्वत्र विद्यते तदा न कोऽपि दरिद्रः स्याद्यतो दरिद्रेऽपि धनादिवस्तूनां सद्भावात्। एवंच सर्वेऽपि धनादिप्राप्त्यर्थं सेवावाणिज्यादि कार्यं कुर्वंति। इदानीं यदि सर्वं सर्वत्र विद्यते, तन्नैरर्थक्यं स्यात्। तथैव हि कार्योत्पादाय कारणमपेक्ष्यते बुधैरिदानीं तदपि न स्यात् सर्वस्य सर्वत्र विद्यमानत्वात्। न हि किंचित्कार्यं किंचित्कारणमिति।

णेयं णाणं उहयं तिरोहियं तं च जाणणमसक्कं ।
अहवाविरभावगयं सव्वत्थ विजाणये सव्वा ॥ ५२ ॥

सर्वं यदि सर्वगतं विद्यते इहास्ति कोऽपि न दरिद्री ।
सेवावाणिज्यकार्यं न कारणं किमपि कस्यैव ॥
ज्ञेयं ज्ञानमुभयं तिरोहितं तच्च ज्ञातुमशक्यम् ।
अथवाविर्भावगतं सर्वत्र विजानीध्वं सर्वम् ॥

सर्वमेकब्रह्मस्वभावात्मकमिति पक्षे दूषणमाह—

जइ सव्वं बंभमयं तो किह विविहासहावगं दव्वं ।
एक्कविणासे णासइ सुहासुहं सव्वलोयाणं ॥५३॥

यदि सर्वं ब्रह्ममयं तर्हि कथं विविधस्वभावकं द्रव्यम् ।
एकविनाशे नश्येत् शुभाशुभं सर्वलोकानाम् ॥

अविद्यावशादेव भेदव्यवस्था इति चेत्तदनूद्य दूषयति—

बंभसहावाऽभिण्णा जइ हु अविज्जा वियप्पदे कह वा ।
ता तं तस्स सहावं अह पुव्वुत्तं पलोयज्जा ॥५४॥

ब्रह्मस्वभावाऽभिन्ना यदि ह्यविद्या विकल्प्यते कथं वा ।
तर्हि सा तस्य स्वभावोऽथ पूर्वोक्तं विलोकय ॥

यदि सर्वपक्षेषु दोषास्तर्हि के वास्तवा इत्यत आह—

वत्थू हवेइ तच्चं वच्छंसा पुण हवंति भयणिज्जा ।
सियसाविक्खा वत्थू भणंति इयरा हु णो जह्मा ॥५५॥

वस्तु भवेत्तत्त्वं वस्त्वंशाः पुनः भवन्ति भजनीयाः ।
स्यात्सापेक्षा वास्तवा भणन्ति इतरे हि नो यस्मात् ॥

एकान्तपक्षे तु—

सव्वे वि य एयन्ते दव्वसहावा विदूसिया होंति ।
दुट्ठे ताण ण हेऊ सिज्झइ संसार मोक्खं वा ॥५६॥

सर्वेऽपि चैकान्ते द्रव्यस्वभावा विदूषिता भवन्ति ।
दुष्टत्वे तेषां न हेतुः सिद्ध्यति संसारो मोक्षो वा ॥

स्वमतसमर्थनार्थं दृष्टान्तमाह—

दव्वं विस्ससहावं एक्कसहावं कयं कुदिट्ठीहिं ।
लद्धूण एयदेसं जह करिणो जाइअन्धेहिं ॥५७॥

द्रव्यं विश्वस्वभावं एकस्वभावं कृतं कुदृष्टिभिः ।
लब्ध्वैकदेशं यथा करिणो जात्यन्धैः ॥

" नित्यैकान्तमतं यस्य तस्यानेकान्तता कथम् ।
अनेकान्तमतं यस्य तस्यैकान्तमतं स्फुटम् ॥१॥ "

स्वभावानां युक्तिपथ* प्रस्थायित्वं, नाम भेदं च यथाक्रमं गाथात्रयेणाह—

भावा णेयसहावा पमाणगहणेण होंति णिव्वत्ता ।
एक्कसहावा वि पुणो ते च्चिय णयभेयगहणेण ॥५८॥

भावा अनेकस्वभावाः प्रमाणग्रहणेन भवन्ति निर्वृत्ताः ।
एकस्वभावा अपि पुनः ते चैव नयभेदग्रहणेन ॥

स्वभावा द्विविधाः सामान्या (२) विशेषाश्च । तत्र सामान्यस्वभावानां नामान्याह—

अत्थित्ति णत्थि णिच्चं अणिच्चमेगं अणेग भेदिदरं ।
भव्वाभव्वं परमं सामण्णं सव्वदव्वाणं ॥५९॥

---

* प्रमाणनयात्मिका युक्तिः ॥ २ सामान्यस्वभावा एकादश ।

अस्तीति नास्ति (१) नित्यमनित्यमेकमनेकं भेद (२) इतरः ।
भव्या (३) भव्यो परमं सामान्यं सर्व्वद्रव्याणां ॥

विशेष (४) स्वभावानां सामान्याह—

चेदणमचेदणं पि हु मुत्तममुत्तं च एगबहुदेसं ।
सुद्धासुद्ध विभावं उवयरियं होइ कस्सेव ॥६०॥

चेतनमचेतनमपि हि मूर्तममूर्तं चैकबहुदेशम् ।
शुद्धाशुद्धं विभावं उपचरितं भवति कस्यैव ॥

तेषामपि (५) स्वरूपव्याख्यानार्थं गाथाषट्केनाह—

अत्थिसहावे सत्ता[६] असंतरूवा हु[७] अण्णमण्णेण
सोयं इति सं णिच्चा [८] अणिच्च [९] रूवा हु पज्जाये॥६१।

अस्तित्वस्वभावे सत्ता असत्त्वा हि अन्यदन्येन ।
सोयमिति सा नित्या अनित्यरूपा हि पर्याये ॥

एका अ जुद[१०] सहावे अणेकरूवा [११] हु विविहभावत्था।
भिण्णा[१२]हु वयण भेदे ण हु वे भिण्णा[१२ अभेदादो॥६२॥

---

(१) एते चत्वारो युगलाः । (२) भेदस्वभावः अभेद-स्वभावः । [३] भव्यस्वभावः अभव्यस्वभावः । (४) विशेषस्वभावा दश । (५) सामान्यैनैकविंशतिस्वभावानाम् । (६) स्वरूपेण सर्वे तदात्मकाः । [७] पररूपेण असत्त्वा असत्स्वरूपाः । [८ सोयमिति प्रत्यभिज्ञानं नित्याः । [९] पर्यायार्थिकनयेनानित्याः। (१०) स्वभाविनं परित्यज्यान्यत्र न वर्तन्ते इत्येकस्वभावाधिकरणत्वादेकरूपाः । (११) अनेकभावेषु पदार्थेषु वर्तमानत्वादनेक-रूपाः । (१२) जावदिया वयणपहा तावदिया चेव परमत्था इति वचनभेदाद्भिन्नाः । [१२] अभिन्नसत्ताकत्वादभिन्नाः ।

एका अयुत्तस्वभावे अनेकरूपा हि विविधभावस्था ।
भिन्ना हि वचनभेदे नहि सा भिन्ना अभेदात् ॥

भव्वगुणादो [१]भव्वा तव्विवरीएण होंति विवरीया [२]
सब्भावेण सहावा [३] सामण्णसहावदो सव्वे ॥६३॥

भव्यगुणाद्भव्यास्तद्विपरीतेन भवन्ति विपरीताः ।
स्वभावेन स्वभावाः सामान्यस्वभावतः सर्वे ॥

अणुहवभावो चेयणमचेयणं होदि तस्स विवरीयं ।
रूवाइपिंड मुत्तं विवरीये ताण विवरीयं ॥६४॥

अनुभवभावश्चेतनमचेतनं भवति तस्य विपरीतम् ।
रूपादिपिण्डो मूर्तं विपरीते तेषां विपरीतम् ॥

खेत्तं पएसणाम एक्काणेक्कं च दव्वपज्जयदो ।
सहजादो रूवंतरगहणं जो सो हु विब्भावो ॥६५॥

क्षेत्रं प्रदेशनाम एकानेकं च द्रव्यपर्ययतः ।
सहजाद्रूपांतरग्रहणं यत्स हि विभावः ॥

कम्मक्खयादु सुद्धो मिस्सो पुण होइ इयरजो भावो ।
जं वि य दव्वसहावं उवयारं तं पि ववहारा ॥ ६६ ॥

कर्मक्षयाच्छुद्धो मिश्रः पुनर्भवति इतरजो भावः ।
योऽपि च द्रव्यस्वभावः उपचारः सोपि व्यवहारात् ॥

---

१ भवितुं परिणमितुं योग्यत्वं तु भव्यत्वं तेन विशिष्टत्वाद्भव्याः ।
२ तद्विपरीतेनाभव्याः ।
३ पारिणामिकभावप्रधानत्वेन परमस्वभावात्मकाः ।

स्वभावानां यथा निरर्थकत्वं सार्थकत्वं वा तथा दर्शयति—

णिरवेक्खे एयन्ते संकरआदीहि ईसिया भावा ।
णो णिजकज्जे अरिहा विवरीए ते वि खलु अरिहा॥६७

निरपेक्षे एकांते संकरादिभिरीषिता भावाः ।
नो निजकार्येऽर्हाः विपरीते तेऽपि खल्वर्हाः ॥

गुणपर्याययोः स्वभावत्वमनुक्तस्वभावानामन्तर्भावं
च दर्शयति—

गुणपज्जायसहावा दव्वत्तमुवगया हु ते जह्मा ।
पिच्छह अंतरभावं अण्णगुणाइण भावाणं ॥ ६८ ॥

गुणपर्यायस्वभावा द्रव्यत्वमुपगता हि ते यस्मात् ।
प्रेक्षध्वमंतर्भावं अन्यगुणादीनां भावानाम् ॥

प्रत्यकद्रव्यस्वभावसंख्यामाह—

इगवीसं तु सहावा जीवे तह जाण पोग्गले णयदो ।
इयराणं संभवदो णायव्वा णाणवंतेहिं ॥ ६९ ॥

एकविंशतिस्तु स्वभावा जीवे तथा जानीहि पुद्गले नयतः ।
इतरेषां सम्भवतो ज्ञातव्या ज्ञानवद्भिः ॥

तदेवाह प्रत्येकं—

इगवीसं तु सहावा दोण्हं [१] तिण्हं [२] तु सोडसा भणिया ।
पंचदसा पुण काले दव्वसहावा [३] य णायव्वा ॥७०॥

---

१ जीवपुद्गलयोः । २ धर्माधर्माकाशानाम् । (३) तथा चोक्तं—एकविंशतिभावाः स्युर्जीवपुद्गलयोर्मताः । धर्मादीनां षोडश स्युः काले पंचदश स्मृताः ॥१॥ धर्मादित्रयाणां चेतनत्वमेकप्रदेशत्वं विभावस्वभावत्वं मूर्तस्वभावत्वमशुद्धस्वभावमपनयेत्, कालस्य बहुप्रदेशत्वमपनयेत् ।

एकविंशतिस्तु स्वभावा द्वयोस्त्रयाणां तु षोडश भणिताः ।
पंचदश पुनः काले द्रव्यस्वभावाश्च ज्ञातव्याः ॥

स्वभावविभाविनोः स्वरूपं प्रमाणनयविषयं व्याचष्टे—

सर्वथैकांतेन सद्रूपस्य न नियतार्थव्यवस्था सङ्करादिदोषत्वात् तथा सद्रूपस्य सकलशून्यताप्रसंगात् [१] । नित्यस्यैकस्वरूपत्वात् एकरूपस्यार्थक्रियाकारित्वाभावः, अर्थक्रियाकारित्वाभावे द्रव्यस्याप्यभावः । अनित्यपक्षेऽपि निरन्वयत्वादर्थक्रियाकारित्वाभावे द्रव्यस्याप्यभावः । एकरूपस्यैकांतेन विशेषाभावः सर्वथैकरूपत्वात् । विशेषाभावे (२) सामान्यस्याप्यभावः । अनेकपक्षेऽपि तथा द्रव्याभावो निराधारत्वात् । भेदपक्षेऽपि विशेषस्वभावानां निराधारत्वादर्थक्रियाकारित्वाभावः । अर्थक्रियाकारित्वाभावे द्रव्यस्याप्यभावः । अभेदपक्षेऽपि सर्वथैकरूपत्वादर्थक्रियाकारित्वाभावः । अर्थक्रियाकारित्वाभावे द्रव्यस्याप्यभावः । भव्यस्यैकांतेन परपरिणत्या संकरादि (३) दोषसम्भवः । अभव्यस्यापि तथा शून्यताप्रसंगः स्वरूपेणाप्यभवनात् । स्वभावरूपस्यैकांतेन संसाराभावः । विभावपक्षेऽपि तथा मोक्षस्याप्यसम्भवः । चैतन्यमेवेत्युक्ते सर्वेषां शुद्धज्ञानचैतन्यावाप्तिर्भ-

---

१ 'सर्वथैकांतेन' इत्यत आरभ्य 'शून्यताप्रसंगा'दित्येतावत्पाठः ख-पुस्तके नास्ति ।

२ निर्विशेषं हि सामान्यं भवेच्छशविषाणवत् । सामान्यरहितत्वाच्च विशेषस्तद्वदेव हि ।

३ संकरव्यतिकरविरोधवैयधिकरण्यानवस्थासंशयाप्रतिपत्त्यभावाश्चेत्यष्टौ दोषाः ।

वेत् । तथा अचैतन्यपक्षेऽपि सकलचैतन्योच्छेदः स्यात् । मू-र्तस्यैकांतेनात्मनो न मोक्षावाप्तिः स्यात् । अमूर्तस्यापि आत्मनस्तथा संसारविलोपः स्यात् । एकप्रदेशस्यैकांतेनात्मनोऽनेकार्थक्रियाकारित्वहानिः स्यात् । अनेकप्रदेशत्वेऽपि तथा तस्य नार्थक्रियाकारित्वं स्वस्वभावशून्यताप्रसंगात् । शुद्धस्यैकांतेनात्मनो न कर्ममलकलंकावलेपः सर्वथा निरञ्जनत्वात् । अशुद्धस्यापि तथात्मनो न कदाचिदपि शुद्धबोधप्रसंगः स्यात्तन्मयत्वात् [१] उपचरितैकांतपक्षेऽपि नात्मज्ञता सम्भवति नियमितपक्षत्वात् । तथात्मनोऽनुपचरितपक्षेऽपि परज्ञतादीनां विरोधः । उभयैकान्तपक्षेऽपि विरोधः एकांतत्वात् । तदनेकान्तत्वेऽपि कस्मान्न भवति ? स्याद्वादात् । स च क्षेत्रादिभेदे दृष्टोऽहिनकुलादीनां । स च व्याघातकः, सहानवस्थालक्षणः, प्रतिबंध्यप्रतिबंधकश्चेति अनवस्थानादिकं वा । तत्रानवस्थानं द्विविधं, गुणानामेकाधारत्वलक्षण, गगनतद्भावलक्ष्मीति । संकरः व्यतिकरः अनवस्था अभावः अदृष्टकल्पना दृष्टपरिहाणिः विरोधः वैयधिकरण्यं चेति अष्टदोषाणां एकांते सम्भवः ।

नानास्वभावसंयुक्तं द्रव्यं ज्ञात्वा प्रमाणतः ।
तच्च सापेक्षसिद्ध्यर्थं स्यान्नयैर्मिश्रितं कुरु ॥ १ ॥
भावः स्यादस्ति नास्तीति कुर्यान्निर्बाधमेव तम् ।
फलेन चास्य सम्बन्धो नित्यानित्यादिकं तथा ॥ २ ॥

स्वभावस्वभाविनोः स्वरूपं प्रमाणनयविषयं व्याचष्टे---

अत्थित्ताइसहावा सव्वा सब्भाविणो ससब्भावा ।

---

१ अशुद्धस्वाभावमयत्वात् । शून्यत्वादित्यपि पाठः ।

उहयं जुगवपमाणं गहइ णओ गउणमुक्खभावेण ॥७१॥

अस्तित्वादिस्वभावाः सर्वे स्वभाविनः स्वस्वभावाः ।
उभयं युगपत्प्रमाणं गृह्णाति नयो गौणमुख्यभावेन ॥

स्याच्छब्दरहितत्वेन दोषमाह—

सियसद्देण विणा इह विसयं दोह्णं वि जे विगिह्णंति ।
मोत्तूण अमियभोज्जं विसभोज्जं ते विकुव्वंति ॥ ७२ ॥

स्याच्छब्देन विनेह विषयं द्वयोरपि येऽपि गृह्णंति ।
मुक्त्वामृतभोज्यं विषभोज्यं तेऽपि कुर्वन्ति ॥

स्याच्छब्दसहितत्वे गुणमाह—

सियसद्देण य पुट्ठा वेन्ति णयत्था हु वत्थुसब्भावं ।
वत्थू जुत्तीसिद्धं जुत्ती पुण णयपमाणादो ॥७३॥

स्याच्छब्देन च स्पृष्टा ब्रुवन्ति नयार्था हि वस्तुस्वभावम् ।
वस्तु युक्तिसिद्धं युक्तिः पुनर्नयप्रमाणतः ॥

उपसंहरन्नाह—

इदि पुव्वुत्ता धम्मा सियसावेक्खा ण गेह्णए जो हु ।
सो इह मिच्छाइट्ठी णायव्वो पवयणे भणिओ ॥७४॥

इति पूर्वोक्तान्धर्मान्स्यात्सापेक्षान्न गृह्णीयाद् यो हि ।
स इह मिथ्यादृष्टिः ज्ञातव्यः प्रवचने भणितः ॥

कर्मजक्षायिकस्वाभाविकस्वभावानां संख्यां स्वरूपं चाह—

चारिवि कम्मे जणिया इक्को खाइय इयर परिणामी ।
भावा जीवे भणिया णयेण सव्वेवि णायव्वा ॥७५॥

चत्वारोऽपि कर्मणि जनिता एकः क्षायिकः इतरः परिणामी ।

भावा जीवे भणिता नयेन सर्वेपि ज्ञातव्याः ॥

ओदयिओ उवसमिओ खओवसमिओ वि ताण खलु भेओ ।

तेसिं खयादु खाइ परिणामी उहयपरिचत्तो ॥७६॥

औदयिक औपशमिकः क्षायोपशमिकोपि तेषां खलु भेदः ।

तेषां क्षयात्तु क्षायिकः परिणामी उभयपरित्यक्त ॥

हेयोपादेयत्वं स्वभावानां दर्शयति--

हेया कम्मे जणिया भावा खयजा हु मुण सुफलरूवा ।

को उत्ताणं भणिओ परमसहावो हु जीवस्स ॥७७॥

हेयाः कर्मणि जनिता भावाः क्षयजा हि मनु स्वफलरूपाः ।

क उक्तानां भणितः परमस्वभावो हि जीवस्य ॥

जीवपुद्गलयोर्विभावहेतुत्वं दर्शयति--

भणिया जे विब्भावा जीवाणं तहय पोग्गलाणं च ।

कम्मेण य जीवाणं कालादो पोग्गला णेया ॥७८॥

भणिता ये विभावाः जीवानां तथा च पुद्गलानां च ।

कर्मणा च जीवानां कालतः पुद्गलानां ज्ञेयाः ॥

विभावस्वभावयोः स्वरूपं संबंधप्रकारं फलं च गदति तत्र तावत्स्वरूपम्--

मुत्ते खंधविहावो बंधो गुणणिद्धरुक्खजो भणिओ ।

तं पि य पडुच्च कालं तम्हा कालेण तस्स तं भणियं॥७९॥

मूर्ते स्कन्धविभावो बन्धो गुणस्निग्धरूक्षजो भणितः ।

सोपि च प्रतीत्य कालं तस्मात् कालेन तस्य सो भणितः ॥

सम्बन्धप्रकारमाह—

जह जीवत्तमणाई जीवे बन्धो तहेव कम्माणं ।
तं पि य दव्वं भावं जाव सजोगिस्स चरिमंतं ॥ ८० ॥

यथा जीवत्वमनादि जीवे बन्धस्तथैव कर्मणाम् ॥
सोऽपि च द्रव्यं भावः यावत्सयोगिनश्चरमान्तम् ॥

प्रकरणवशात्प्रकृतीनां भेदं बन्धहेतूंश्च सूचयति—

मूलुत्तर तह इयरा भेया पयडीण होंति उहयाणं ।
हेऊ दो पुण पुट्ठा हेऊ चत्तारि णायव्वा ॥ ८१ ॥

मूलोत्तरास्तथेतरे भेदाः प्रकृतीनां भवन्त्युभयोः ।
हेतू द्वौ पुनः पृष्टा हेतवश्चत्वारो ज्ञातव्याः ॥

तानेव बन्धहेतूनाह—

मिच्छत्ता अविरमणं कसाय जोगा य जीवभावा हु ।
दव्वं मिच्छत्ताइ य पोग्गलदव्वाण आवरणा ॥ ८२॥

मिथ्यात्वमविरमणं कषायो योगाश्च जीवभावा हि ।
द्रव्यं मिथ्यात्वादि च पुद्गलद्रव्याणामावरणानि ॥

भावद्रव्ययोरन्योन्यं कार्यकारणभावमाह—

भावो दव्वणिमित्तं दव्वं पि य भावकारणं भणियं ।
अण्णोण्णं बज्झंता कुणंति पुट्ठी हु कम्माणं ॥ ८३ ॥

भावो द्रव्यनिमित्तं द्रव्यमपि च भावकारणं भणितम् ॥
अन्योन्यं बध्नन्तः कुर्वन्ति पुष्टिं हि कर्मणाम् ॥

मूलप्रकृतीनां नामान्याह—

दंसणणाणावरणं वेदामोहं तु आउ णामं च ।
गोदंतराय मूला पयडी जीवाण णायव्वा ॥ ८४ ॥

दर्शनज्ञानावरणे वेदो मोहस्तु आयुर्नाम च ।
गोत्रमन्तरायो मूलप्रकृतयो जीवानां ज्ञातव्याः ॥

उत्तरप्रकृतीनां यथाक्रमं संख्यामाह—

णव पण दो अडवी चउ तेणउदी तहेव दो पंच ।
एदे उत्तरभेया एयाणं उत्तरोत्तरा हुंति ॥ ८५ ॥

नव पंच द्वौ अष्टाविंशतिश्चत्वारस्त्रिनवतिस्तथैव द्वौ पंच ।
एते उत्तरभेदा एतासां उत्तरोत्तरा भवन्ति ॥

एताः सामान्येन शुभाशुभभेदाभिन्ना जीवानां सुखदुःखफलदा भवंतीत्याह—

असुहसुहाणं भेया सव्वा वि य ताउ होंति पयडीओ ।
काऊण पज्जयठिदी सुहदुखं फलंति जीवाणं ॥८६॥

अशुभशुभानां भेदाः सर्वा अपि च ता भवन्ति प्रकृतयः ।
कृत्वा पर्यायस्थितिं सुखदुःखं फलन्ति जीवानाम् ॥

पर्यायस्थितिकारणमाह—

सुरणरणारयतिरिआ पयडीओ णामकम्मणिव्वत्ता ।
जहण्णोक्कस्समज्झिमआउवसेणंतिया हु ठिदी ॥८७॥

सुरनरनारकतिरश्चयः प्रकृतयो नामकर्मनिर्वृत्ताः ।
जघन्योत्कृष्टमध्यमायुर्वशेनान्तिका हि स्थितिः ॥

चतुर्गतिजीवानां जघन्यमध्यमोत्कृष्टायुःप्रमाणं कथयति तत्र तावन्मनुष्याणाम्—

अन्तोमुहुत्त अवरा वरा हु मणुआण होइ पल्लतियं ।
मज्झिम अवरा वड्ढी जाव वरं समयपरिहीणम् ॥८८॥

अन्तर्मुहूर्तमपरा परा हि मनुजानां भवति पल्यत्रयम् ।

मध्यमा *अपराद्वृद्धिर्यावत्परं समयपरिहीणम् ।

तिरश्चाम्—

जह मणुए तह तिरिए गब्भजपंचिंदिये वि तण्णेयं ।
इयराणं बहुभेया आरिसमग्गेण णायव्वा ॥८९॥

यथा मनुजे तथा तिरश्चि गर्भजपञ्चेन्द्रियेपि तज्ज्ञेयम् ।
इतरेषां बहुभेदा आर्षमार्गेण ज्ञातव्याः ॥

देवानां नारकाणां च—

दहसहसा सुरणिरये वासा अवरा दु वरा हु तेत्तीसं ।
सागरठिदीण संखा सेसे मणुआणामिव मुणह ॥९०॥

दशसहस्राणि सुरनरके वर्षाणि अपरा तु परा हि त्रयस्त्रिंशत् ।
सागरस्थितीनां संख्या शेषां मनुजानामिव मन्यध्वम् ॥

तेषु पर्यायेषु जीवाः पंचावस्थासु चतुर्विधदुःखेन दुःखिता भवन्तीत्याह—

पंचावत्थजुओ सो चउविहदुक्खेण दुक्खिओ य तहा।
तावदु कालं जीओ जाव ण भावइ परमसब्भावं ॥९१॥

पंचावस्थायुक्तः स चतुर्विधदुःखेन दुःखितश्च तथा ।
तावत्कालं जीवो यावन्न भावयति परमस्वभावम् ॥

ताः पंचावस्था आह—

पंचावत्था देहे कम्मादो होंति सयलजीवाणं ।
उप्पत्ती बालत्तं जुवाण वुड्ढत्त होइ तह मरणं ॥ ९२ ॥

---

* जघन्यादारभ्य आ समयोनमुत्कृष्टं मध्यमायुःप्रमाणं सर्वत्र ।

पंचावस्था देहे कर्मतो भवन्ति सकलजीवानाम् ।
उत्पत्तिर्बालत्वं यौवनं वृद्धत्वं भवति तथा मरणम् ॥

चतुर्विधदुःखानां नाम लक्षणानि चाह—

सहजं खुधाइजादं णयमित्तं सीदवादमादीहिं ।
रोगादिआ य देहज अणिट्ठजोये तु माणसियं ॥९३॥

सहजं क्षुदादिजातं नैमित्तिकं शीतवातादिभिः ।
रोगादिकाच्च देहजं अनिष्टयोगे तु मानसिकम् ॥

विभावस्वभावफलमाह—

विब्भावादो बंधो मोक्खो सब्भावभावणालीणो ।
तं खु णराणं णच्चा पच्छा आराहओ होई ॥९४॥

विभावाद्बन्धो मोक्षः सद्भावभावना लीनः ।
तं खलु नराणां ज्ञात्वा पश्चादाराधको भवति ॥

एवमनेकान्तं समर्थ्य तत्फलं च दर्शयति—

एवं सियपरिणामी बज्झदि मुंचेदि दुविहहेदूहिं ।
ण विरुज्झदि बंधाई जह एयंते विरुज्झेई ॥९५॥

एवं स्यात्परिणामी बध्नाति मुंचति द्विविधहेतुभिः ॥
न विरुध्यते बन्धादिर्यथैकान्ते विरुध्यते ॥

इति द्रव्यसामान्यलक्षणम् ॥

इदानीं विशेषगुणानां स्वामित्वसमर्थनार्थमाह-

तत्र गाथाद्वयेनाधिकार पातनिका---

सामण्णुत्ता जे गुणपज्जयदव्वाण लक्खणं संखा ।
णय विसयदंसणत्थे ते चेव विसेसदो भणिमो ॥९६॥

सामान्योक्ता ये गुणपर्ययद्रव्याणां लक्षणं संख्या ।
नयविषयदर्शनार्थं तांश्चैव विशेषतो भणिष्ये ॥

गयणं पोग्गल जीवा धम्माधम्मं खु काल दव्वं च ।
भणियव्वा अणुकमसो जहट्ठिया गयणगब्भेसु ॥९७॥

गगनं पुद्गलः जीवा धर्माधर्मौ खलु कालः द्रव्यं च ।
भणितव्यानि अनुक्रमशो यथास्थितानि गगनगर्भेषु ॥

गगनद्रव्यस्य तावद्विशेषलक्षणं भेदं चाह--

चेयणरहियममुत्तं अवगाहणलक्खणं च सव्वगयं ।
लोयालोयविभेयं तं णहदव्वं जिणुद्दिट्ठं ॥ ९८ ॥

चेतनारहितममूर्तं अवगाहनलक्षणं च सर्वगतम् ।
लोकालोकद्विभेदं तन्नभोद्रव्यं जिनोद्दिष्टम् ॥

लोकालोकयोर्लक्षणमाह--

जीवेहि पुग्गलेहि य धम्माधम्मेहि जं च कालेहिं ।
उद्धद्धं तं लोयं सेसमलोयं हवे णन्तम् ॥ ९९ ॥

जीवैः पुद्गलैश्च धर्माधर्मैश्च यश्च कालैः ।
रुद्धिद्धः स लोकः शेषोऽलोको भवेदनन्तः ॥

अनुषंगिणः स्वरूपं निरूप्य पुद्गलसम्बन्धमाह--

लोगमणाइमणिहणं अकिट्टिमं तिविहभेयसंठाणं ।

खंधादो तं भणियं पोग्गलदव्वाण सव्वदरसीहिं॥१००॥

लोकोऽनादिरनिधनोऽकृत्रिमस्त्रिविधभेदसंस्थानः।
स्कन्धतः स भणितः पुद्गलद्रव्याणां सर्वदर्शिभिः॥

तस्यैव अर्थसमर्थनार्थमाह—(उक्त चान्यग्रन्थे)—

स्वभावतो यथा लोके चन्द्रार्काद्यन्तरिक्षकाः।
तथा लोकस्य संस्थानमाकाशान्ते जिनोदितम्॥१॥
ऊर्ध्वाधो गमनं नास्ति तिर्यग्रूपे पुनस्तथा।
अगुरुलघ्वन्तर्भावाद्गमनागमनं नहि॥२॥

एतस्यैव स्वरूपं प्रयोजनं च वदति—

मुत्तो एयपदेसी कारणरूवोणु कज्जरूवो वा।
तं खलु पोग्गलदव्वं खंधा ववहारदो भणिया॥१०१॥

मूर्तः एकप्रदेशी कारणरूपोणुः कार्यरूपो वा।
स खलु पुद्गलद्रव्यं स्कन्धा व्यवहारतो भणिताः॥

वण्ण रस गंध एक्कं फासा दो जस्स संति समयम्मि।
तं इह मुत्तं भणियं अवरवरं कारणं जं च॥१०२॥

वर्णो रसो गन्ध एकः स्पर्शौ द्वौ यस्य सन्ति समये।
स इह मूर्तो भणितः अवर (१) वरे कारणं यच्च॥

दव्वाणं च पएसे जो हु विहत्तो हु कालसंखाणं।
णियगुणपरिणामादो कत्ता सो चेव खंधाणं॥१०३॥

---

[१] अपरं च परं चानयोः समाहारः अपरपरं तस्मिन्। परमाणुनैव महदिदम्।

द्रव्याणां च प्रदेशो यो हि विधाता हि कालसंख्यानाम् ।
निजगुणपरिणामतः कर्ता स चैव स्कन्धानाम् ॥

तत्समर्थ्यं जीवसम्बन्धं प्राह—

खंधा बादरसुहुमा णिप्पण्णं तेहि लोयसंठाणं ।
कम्मं णोकम्मं विय जं बन्धो होइ जीवाणं ॥१०४॥

स्कन्धा बादरसूक्ष्मा निष्पन्नं तैर्लोकसंस्थानम् ।
कर्म नोकर्मापि च यद्बन्धो भवति जीवानाम् ॥

जीवानां द्वैविध्यं प्रदर्शयति—

जीवा हु तेवि दुविहा मुक्का संसारिणो य बोहव्वा ।
मुक्का एयपयारा विविहा संसारिणो णेया ॥१०५

जीवा हि तेऽपि द्विविधा मुक्ताः संसारिणश्च बोद्धव्याः ।
मुक्ता एकप्रकारा विविधाः संसारिणो ज्ञेयाः ॥

जीवस्य स्वरूपमाह—

पहु जीवत्तं चेयण उवयोग अमुत्त मुत्तदेहसमं ।
कत्ता हु होइ भुत्ता तहेव कम्मेण संजुत्तो ॥१०६॥

प्रभुः जीवत्वं चेतन उपयोगोऽमूर्तो मूर्तदेहसमः ।
कर्ता हि भवति भोक्ता तथैव कर्मणा संयुक्तः ॥

प्रभोर्युक्तिसमर्थनार्थं प्रभुत्वमाह गाथाद्वयेनेति—

णट्ठट्ठकम्मसुद्धा असरीराणंतसोक्खणाणड्ढा ।
परमपहुत्तं पत्ता जे ते सिद्धा हु खलु मुक्का ॥१०७॥

नष्टाष्टकर्मशुद्धा अशरीरा अनन्तसौख्यज्ञानाढ्याः ।
परमप्रभुत्वं प्राप्ता ये ते सिद्धा हि खलु मुक्ताः ॥

घाइकम्मखयादो केवलणाणेण विदिदपरमट्ठो ।
उवदिट्ठसयलतत्तो लद्धसहावो पहू होइ ॥१०८॥
घातिकर्मक्षयतः केवलज्ञानेन विदितपरमार्थः ।
उपदिष्टसकलतत्त्वो लब्धस्वभावः प्रभुर्भवति ॥

जीवाभावनिषेधार्थं तस्यैव स्वरूपं व्युत्पत्तिश्चोच्यते तत्र तावत्स्वरूपम्—

कम्मकलंकालीणा अलद्धससहावभावसब्भावा ।
गुणमग्गणजीवठिया [१] जीवा संसारिणो भणिया ॥
॥१०९॥

कर्मकलंकलीना अलब्धस्वस्वभावसद्भावाः ।
गुणमार्गणाजीवस्थिता जीवाः संसारिणो भणिताः ॥

जीवस्य व्युत्पत्तिं प्राणानां नामानि चाह—

जो जीवदि जीविस्सदि जीवियपुव्वो हु चदुहि पाणेहिं ।
सो जीवो णायव्वो इंदियबलमाउउस्सासे ॥११०॥
यो जीवति जीविष्यति जीवितपूर्वो हि चतुर्भिः प्राणैः ।
स जीवो ज्ञातव्य इन्द्रियबलमायुरुच्छ्वासैः ॥

जीवो भावाभावो केण पयारेण सिद्धि संभवई ।
अह संभवइ पयारो सो जीवो णत्थि संदेहो ॥१११॥
जीवो भावाभावः केन प्रकारेण सिद्धिः संभवति ।
अथ सम्भवति प्रकारः स जीवो नास्ति सन्देहः ॥

---

(१) जीवा इत्यनेन जीवसमासा इति बोध्यम् ।

हेयोपादेयार्थं एकस्याप्यस्य चतुर्भेदं दर्शयति—

ते हुंति चदुवियप्पा ववहार-असुद्ध-सुद्ध-परिणामा ।
अण्णे विय बहुभेया णायव्वा अण्णमग्गेण ॥ ११२ ॥

ते भवन्ति चतुर्विकल्पा व्यवहाराशुद्धशुद्धपरिणामात् ।
अन्येऽपि च बहुभेदा ज्ञातव्या अन्यमार्गेण ॥

व्यवहारजीवस्वरूपमाह—

मण वयण काय इंदिय आणप्पाणाउगं च जं जीवे ।
तमसब्भूओ भणदि हु ववहारो लोयमज्झम्मि ॥११३॥

मनो वचनं काय इंद्रियाण्यानप्राणा आयुष्कं च यज्जीवे ।
तदसद्भूतो भणति हु व्यवहारो लोकमध्ये ॥

अशुद्धजीवस्वरूपमाह—

ते चेव भावरूवा जीवे भूदा खओवसमदो य ।
ते हुंति भावपाणा असुद्धणिच्छयणयेण णायव्वा ॥
॥११४॥

ते चैव भावरूपा जीवे भूताः क्षयोपशमाच्च ।
ते भवन्ति भावप्राणा अशुद्धनिश्चयनयेन ज्ञातव्याः ॥

शुद्धजीवस्वरूपमाह—

सुद्धो जीवसहावो जो रहिओ दव्वभावकम्मेहिं ।
सो सुद्धणिच्छयादो समासिओ सुद्धणाणीहिं ॥११५॥

शुद्धो जीवस्वभावो यो रहितो द्रव्यभावकर्मभिः ।
स शुद्धनिश्चयतः समासितः शुद्धज्ञानिभिः ॥

परिणामिजीवस्वरूपमाह—

जो खलु जीवसहावो णो जणिओ णो खयेण संभूदो ।
कम्माणं सो जीवो भणिओ इह परमभावेण ॥११६॥

यः खलु जीवस्वभावो नो जनितो नो क्षयेण संभूतः ।
कर्मणां स जीवो भणित इह परमभावेन ॥

अचैतन्यवादिनमाशङ्क्य चैतन्यं स्वामित्वं चाह—

आदा चेदा भणिओ सा इह फलकज्जणाणभेदा हु ।
तिह्णं पि य संसारी णाणे [१] खलु णाणदेहा हु ११७

आत्मा चेतयिता भणितः सा इह फलकार्यज्ञानभेदा हि ।
तिसृणामपि संसारी ज्ञाने खलु ज्ञानदेहा हि ॥

चेतनास्वामित्वे विशेषमाह—

थावर फलेसु चेदा तस उहयाणं पि होंति णायव्वा ।
अहव असुद्धे णाणे सिद्धा सुद्धेसु णाणेसु ॥ ११ ॥

स्थावरः फलेषु चेतयिता त्रसा उभयोरपि भवंति ज्ञातव्याः ।
अथवा अशुद्धे ज्ञाने सिद्धाः शुद्धेषु ज्ञानेषु ॥

निरुपयोगिकटाक्षमुच्छिद्य जीवस्योपयोगमाह—

उवओगमओ जीवो उवओगो णाणदंसणे भणिओ ॥
णाणं अट्ठपयारं चउभेयं दंसणं णेयं ॥ ११९ ॥

उपयोगमयो जीव उपयोगो ज्ञानदर्शने भणितः ।
ज्ञानमष्टप्रकारं चतुर्भेदं दर्शनं ज्ञेयम् ॥

---

१ ज्ञानचेतना, कर्मचेतना, कर्मफलचेतनेति चेतना त्रिविधा तत्रैतासां तिसृणामपि स्वामी संसारी । ज्ञानचेतनायां तु ज्ञानदेहाः केवलज्ञानशरीराः स्वामिनो भवंति ।

मूर्तैकांतनिषेधार्थं स्याद्मूर्तत्वमाह---

रूवरसगंधफासा सद्दवियप्पा वि णत्थि जीवस्स ।
णो संठाणं किरिया तेण अमुत्तो हवे जीवो ॥ १२० ॥

रूपरसगंधस्पर्शाः शब्दविकल्पा अपि न संति जीवस्य ।
नो संस्थानं क्रिया तेनामूर्तो भवेज्जीवः ॥

अमूर्तपक्षेऽपि तथा स्यान्मूर्तत्वमाह---

जो हु अमुत्तो भणिओ जीवसहावो जिणेहि परमत्थो ।
उवयरियसहावादो अचेयणो मुत्तिसंजुत्तो ॥ १२१ ॥

यश्चामूर्तो भणितो जीवस्वभावो जिनैः परमार्थः ।
उपचरितस्वभावात् अचेतनो मूर्तिसंयुक्तः ॥

व्यापकत्वमणुमात्रत्वमपास्य देहमात्रत्वमाह---

गुरुलघुदेहपमाणो अत्ता चत्ताहु सत्तसमुघायं ।
ववहारा णिच्छयदो असंखदेसो हु सो णेओ ॥ १२२ ॥

गुरुलघुदेहप्रमाण आत्मा त्यक्त्वा हि सप्तसमुद्घातान् ।
व्यवहारान्निश्चयतोऽसंख्यदेशो हि स ज्ञेयः ॥

प्रकरणवशाद्देहस्य भेदमाह---

देहा य हुंति दुविहा थावरतसभेददो य विण्णेया ।
थावर पंचपयारा बादरसुहुमा वि चदु तसा तह य ।

देहाश्च भवन्ति द्विविधाः स्थावरत्रसभेदतश्च भिन्नाः ।
स्थावराः पंचप्रकारा बादरसूक्ष्मा अपि चत्वारस्त्रसास्तथा च ॥

बौद्धसांख्यशैवं प्रति भोक्तृत्वाद्याह---

देहजुदो सो भुत्ता भुत्ता सो चेव होइ इह कत्ता ।

कत्ता पुण कम्मजुदो जीओ संसारिओ भणिओ ॥१२४

देहयुतः स भोक्ता भोक्ता सचैव भवति इह कर्ता ।
कर्ता पुनः कर्मयुतो जीवः संसारिको भणितः ॥

उक्तस्य कर्मणो नयसम्बन्धात्कथंचित्सादित्वमाह---

कम्मं दुविहवियप्पं भावसहावं च दव्वसब्भावं ।
भावे सो णिच्छयदो कत्ता ववहारदो दव्वे ॥१२५॥
बंधो अणाइणिहणो संताणादो जिणेहि जो भणिओ ।
सो चेव साइणिहणो जाण तुमं समयबंधेण ॥१२६॥

कर्म्म द्विविधविकल्पं भावस्वभावं च द्रव्यस्वभावम् ।
भावे स निश्चयतः कर्ता व्यवहारतो द्रव्ये ॥
बंधोऽनाद्यनिधनः सन्तानाज्जिनैर्यो भणितः ।
स चैव सादिनिधनो जानीहि त्वं समयबन्धेन ॥

स कस्यचिन्नश्यति किं तद्भवति केन हेतुना प्रहणामित्याह--

कारणदो इह भव्वे णासइ बंधो वियाण कस्सेव ।
ण हु तं अभव्वियसत्ते जह्मा पयडी ण मुंचेइ ॥१२७॥

कारणत इह भव्ये नश्यति बन्धो विजानीहि कस्यैव ।
न हि स अभव्यसत्वे यस्मात्प्रकृतिर्न मुच्यते ॥

खंधा जे पुव्वुत्ता हवंति कम्माणि जीवभावेण ।
लद्धा पुण ठिदिकालं गलंति ते णियफलं दत्ता ॥१२८

स्कन्धा ये पूर्वोक्ता भवन्ति कर्माणि जीवभावेन ।
लब्ध्वा पुनः स्थितिकालं गलन्ति तानि निजफलं दत्वा ॥

कर्तृत्वादिकालमुपादिश्य बन्धमोक्षयोर्गौणं मुख्यं निमित्तं चाह---

भोत्ता हु होइ जइया तइया सो कुणइ रायमादीहिं ।
एवं बंधो जीवे णाणावरणादिकम्मेहिं ॥१२९॥
मिच्छे मिच्छाभावो सम्मे सम्मा वि होइ जीवाणं ।
वत्थू णिमित्तमेत्तं सरायपरिणामवीयरायाए ॥१३०॥

भोक्ता हि भवति यावत्तावत्स करोति रागादिभिः ।
एवं बन्धो जीवे ज्ञानावरणादिकर्मभिः ॥
मिथ्यात्वे मिथ्याभावः सम्यक्त्वे सम्यगपि भवति जीवानाम् ।
वस्तु निमित्तमात्रं सरागपरिणामवीतरागाये [१] ॥

बीजांकुरन्यायेन कर्मणः फलमुपदिशति गाथात्रयेणेति---

कम्मं कारणभूदं देहं कज्जं खु अक्ख देहादो ।
अक्खादु विसयरागं रागादि णिबज्झदे तंपि ॥१३१॥

कर्म कारणभूतं देहः कार्यं खल्वक्षो देहतः ॥
अक्षात्तु विषयरागः रागादि निबध्नाति तदपि ॥

तेण चउग्गइदेहं गेह्णइ पंचप्पयारियं जीवो ।
एयंतं गिह्णंतो पुणो पुणो बंधदे कम्मं ॥१३२॥

तेन चतुर्गतिदेहं गृह्णाति पंचप्रकारकं जीवः ।
एकान्तं गृह्णन्पुनः पुनर्बध्नाति कर्म ॥

इह एव मिच्छदिट्ठी कम्मं संजणइ कम्मभावेहिं ।
जह बीयंकुर णेयं तं तं अवरोप्परं तह व ॥१३३॥

इहैव मिथ्यादृष्टिः कर्म संजनयति कर्मभावैः ॥

---

[१] अयः सम्बन्धस्तस्मिन् ।

यथा वीजांकुरं ज्ञेयं तत्तत्परस्परं तथा च ॥

धर्माधर्मयोः परमार्थव्यवहारकालयोश्च स्वरूपं प्रयोजनं चाचष्टे तत्र तावद्धर्माधर्मयोः स्वरूपमाह---

लोयपमाणममुत्तं अचेयणं गमणलक्खणं धम्मं ।
तप्पडिरूवमधम्मं ठाणे सहयारिणं णेयं ॥१३४॥

लोकप्रमाणोऽमूर्तोऽचेतनो गमनलक्षणो धर्मः ।
तत्प्रतिरूपोऽधर्मः स्थाने सहकारी ज्ञेयः ॥

धर्माधर्मयोः प्रयोजनमाह---

लोयालोयविभेयं गमणं ठाणं च जाण हेदूहिं ।
जइ णहि ताणं हेऊ किह लोयालोयववहारं ॥१३५॥

लोकालोकविभेदं गमनं स्थानं च जानीहि हेतुभ्यां ।
यदि नहि तयोः हेतू कथं लोकालोकव्यवहारः ॥

परमार्थकालस्वरूपमाह---

एयपएसिममुत्तो अचेयणो वट्टणागुणो कालो ।
लोयायासपएसे थक्का ते रयणरासिव्व ॥१३६॥

एकप्रदेश्यमूर्तोऽचेतनो वर्तनागुणः कालः ।
लोकाकाशप्रदेशे स्थितास्ते रत्नराशिरिव ॥

परमार्थकालप्रयोजनमाह---

परमत्थो जो कालो सो चिय हेऊ हवेइ परिणामो ।
पज्जयठिदि उवचरिदो ववहारादो य णायव्वो ॥१३७॥

परमार्थो यः कालः सचैव हेतुर्भवति परिणामः ।
पर्यायस्थित्युपचरितः व्यवहाराच्च ज्ञातव्यः ॥

उक्तं चान्यत्र ग्रन्थे--

एयम्मि पएसे खलु इयरपएसा य पंच णिद्दिट्ठा ।
ताणं कारणकज्जे उहय सरूवेण णायव्वं ॥
एकस्मिन्प्रदेशे खलु इतरप्रदेशाश्च पंच निर्दिष्टाः ।
तेषां कारणकार्यं उभयं स्वरूपेण ज्ञातव्यम् ॥

पुग्गलमज्झत्थोयं कालाणू मोक्खकारणं होई ।
समओ अरूवि जह्मा पुग्गलमुक्को ण मोक्खो हु ॥१३८॥

पुद्गलमध्यस्थो हि कालाणुर्मोक्षकारणं भवति ।
समयोऽरूपी यस्मात्पुद्गलमुक्तो न मोक्षः खलु ॥

व्यवहारकालं निरूपयति--

समयावलि उस्सासो थोवो लव णालिया मुहुत्त दिणं ।
पक्खं च मास वरिसं जाण इमं सयल ववहारं ॥१३९॥

समय आवलिः उच्छ्वासः स्तोको लवो नालिका मुहूर्तः दिनं ।
पक्षश्च मासो वर्षं जानीहीमं सकलं व्यवहारम् ॥

समयकालप्रदेशसिद्ध्यर्थं आह तत्र तावदेकस्मसयस्य प्रमाणमाह--

णहएयपएसत्थो परमाणू मंदगइपवट्टंतो ।
बीयमणंतरखेत्तं जावदियं जादि तं समयकालं ॥१४०॥

नभएकप्रदेशस्थः परमाणुर्मंदगतिप्रवर्तमानः ।
द्वितीयमनंतरक्षेत्रं यावतिके याति स समयकालः ॥

प्रदेशस्य प्रमाणमाह---

जेत्तियमेत्तं खेत्तं अणुणा रुद्धं खु गयणदव्वस्स ।

तं च पएसं भणियं जाण तुमं सव्वदरसीहिं ॥१४१॥

यावन्मात्रं क्षेत्रं अणुना रुद्धं खलु गगनद्रव्यस्य ।

स च प्रदेशो भणितो जानीहि त्वं सर्वदर्शिभिः ॥

गगनादीनां द्रव्यपर्यायाकारमुक्त्वा लोकस्य कार्यत्वं प्रतिष्ठापयति---

गगणं दुविहायारं धम्माधम्मं च लोगदो णेयं ।

विविहा पोग्गलजीवा कालं परमाणुमिव भणियं १४२

गगनं द्विविधाकारं धर्माधर्मौ च लोकतो ज्ञेयौ ।

विविधौ पुद्गलजीवौ कालः परमाणुरिव भणितः ॥

सव्वेसिं पज्जाया लोगे अवलोइया हु णाणीहिं ।

तह्मा लोयं कज्जं कारणभूताणि दव्वाणि ॥१४३॥

सर्वेषां पर्यायाः लोकेऽवलोकिता हि ज्ञानिभिः ।

तस्माल्लोकः कार्यं कारणभूतानि द्रव्याणि ॥

तत्र जीवपुद्गलयोः पर्यायभेदमधिष्ठानं चाह--

सव्वत्थ अत्थि खंधा बादरसुहुमा वि लोयमज्झम्मि ।

थावर तहेव सुहुमा तसा हु तसनाडिमज्झम्मि ।१४४।

सर्वत्र संति स्कंधाः बादरसूक्ष्मा अपि लोकमध्ये ।

स्थावरास्तथैव सूक्ष्मास्त्रसा हि त्रसनालिमध्ये ॥

त्रसनाल्युत्सेधं लोकस्वरूपं चाह--

अह उड्ढतिलोयंता चउरंसा एक्करज्जुपरिमाणा ।

चउदहरज्जुच्छेधा लोयं सयतिगिणतेयालं ॥ १४५ ॥

अध ऊर्ध्वं त्रिलोकांताश्चतुरस्रा एकरज्जुपरिमाणाः ।

चतुर्दशरज्जूत्सेधो लोकः शतानि त्रीणि त्रिचत्वारिंशत् ॥

विगयसिरो कडिहत्थो ताडियजंघो जुवाणरो उड्ढो ।
तेणायारेण ठिओ तिविहो लोगो मुणेयव्वो ॥ १४६ ॥

विगतशिरः कटिहस्तस्ताडितजंघो युवानर ऊर्ध्वः ।
तेनाकारेण स्थितस्त्रिविधो लोको मन्तव्यः ॥

द्रव्यक्षेत्रकालभावैश्च स्वभावा द्रष्टव्या—

दव्वे खेत्ते काले भावे भावा फुडं य लोएज्जा ।
एवं हि थोवबहुगा णायव्वा एण मग्गेण ॥१४७॥

द्रव्ये क्षेत्रे काले भावे भावाः स्फुटं च लोकनीयाः ।
एवं हि स्तोकबहुका ज्ञातव्या अनेन मार्गेण ॥

इति श्री नयचक्रनाम्नि ग्रंथे द्रव्याधिकारः समाप्तः ।

सर्वेषामस्तित्वं कायत्वं पंचानां प्रदेशसंख्यां चाह—

सव्वेसिं अत्थित्तं णियणियगुणपज्जएहि संजुत्तं ।
पंचेव अत्थिकाया उवइट्ठा बहुपदेसादो ॥ १४८ ॥

सर्वेषामस्तित्वं निजनिजगुणपर्ययैः संयुक्तम् ।
पञ्चैवास्तिकाया उपदिष्टा बहुप्रदेशतः ॥

प्रत्येकं प्रदेशप्रमाणमाह—

जीवे धम्माधम्मे हुंति पदेसा हु संखपरिहीणा ।
गयणे णंताणंता तिविहा पुण पोग्गले णेया ॥ १४० ॥

जीवे धर्माधर्मयोर्भवंति प्रदेशा हि संख्यापरिहीणाः ।
गगनेऽनंतानंतास्त्रिविधाः पुनः पुद्गले ज्ञेयाः ॥

इति पञ्चास्तिकायाः ।

इदानीं प्रवचनसाराभिप्रायः कथ्यते, तत्त्वसंख्यामुपादिश्य तस्यैव भेदं स्वभावं चाभिदधाति.

जीवाजीवं आसव बंधो संवरण णिज्जरा मोक्खो ।
एदेहि सत्ततच्चा सवित्थरं पवयणे जाण ॥ १५० ॥

जीवाजीवौ तथास्रवः बन्धः संवरः निर्जरा मोक्षः ।
एतानि सप्त तत्त्वानि सविस्तरं प्रवचने जानीहि ॥

भणिया जीवाजीवा पुव्वं जे हेउ आसवाईणं ।
ते आसवाइ तच्चं साधिज्जं तं णिसामेह ॥ १५१ ॥

भणिता जीवाजीवाः पूर्वं ये हेतव आस्रवादीनाम् ।
तदास्रवादि तत्त्वं साध्यं तन्निशामयध्वम् ॥

आस्रवभेदमुक्त्वा भावास्रवं निरूपयति

दुविहं आसवमग्गं णिद्दिट्ठं दव्वभावभेदेहिं ।
मिच्छत्ताइचउक्कं जीवे भावासवो भणियं ॥ १५२ ॥

द्विविध आस्रवमार्गो निर्दिष्टो द्रव्यभावभेदाभ्यां ।
मिथ्यात्वादि चतुष्कं जीवे भावास्रवो भणितः ॥

द्रव्यास्रवं निरूपयति

लद्धूण तं णिमित्तं जोगं जं पुग्गले पदेसत्थं ।
परिणमदि कम्मभावं (१) तंपि हु दव्वासवं जीवे ॥ १५३

लब्ध्वा तन्निमित्तं योगं यं पुद्गले प्रदेशस्थम् ।
परिणमति कर्मभावं सोऽपि हि द्रव्यास्रवो जीवे ॥

---

१ ' कम्मरूवं '' इत्यपि पाठः ।

बंधस्वरूपमाह-

अप्पपदेसा मुत्ता पुग्गलसत्ती तहाविहा णेया ।
अण्णोण्णं मिलंता बंधो खलु होइ णिद्धाइ ॥ १५४ ॥

आत्मप्रदेशा मूर्ता पुद्गलशक्तिस्तथाविधा ज्ञेया ।
अन्योन्यं मिलंतो बंधः खलु भवति स्निग्धादिः ॥

उक्तं चान्यस्मिन्ग्रन्थे.

कम्मादपदेसाणं अण्णोण्णपवेसणं कसायादो ।
बंधो चउव्विहो खलु ठिदिपयडिपदेसअणुभागा ॥
कर्मात्मप्रदेशानां अन्योन्यप्रवेशनं कषायात् ।
बंधश्चतुर्विधः खलु स्थितिप्रकृतिप्रदेश नुभागात् ॥ १५६ ॥

एवं चतुर्विधबन्धस्य कारणमाह.

जोगा पयडिपदेसा ठिदिअणुभागा कसायदो होंति ।
एवं बंधसरूवं णायव्वं जिणवरे भणियं ॥ १५५ ॥

योगात्प्रकृतिप्रदेशौ स्थित्यनुभागौ कषायतो भवतः ।
एवं बंधस्वरूपं ज्ञातव्यं जिनवरैर्भणितम् ॥

संवरस्वरूपं निरूपयति.

रुंधिय छिद्दसहस्से जलजाणे जह जलं तु णासवदि ।
मिच्छत्ताइअभावे तह जीवे संवरो होई ॥ १५६ ॥

रुद्धे छिद्रसहस्रे जलयाने यथा जलं तु नास्रवति ।
मिथ्यात्वाद्यभावे तथा जीवे संवरो भवति ॥

निर्जराया लक्षणं भेदौ चाह.

चिरबद्धकम्मणिवहं जीवपदेसा हु जं च परिगलइ ।

सा णिज्जरा पउत्ता दुविहा सविपक्क अविपक्का ॥१५७॥

चिरबद्धकर्मनिवहः जीवप्रदेशाद्धि यत्र परिगलति ।

सा निर्जरा प्रोक्ता द्विविधा सविपाका अविपाका ।

सविपाकाविपाकयोर्निर्जरयोर्लक्षणमाह--

सयमेव कम्मगलणं इच्छारहियाण होइ सत्ताणं ।

सविपक्क णिज्जरा सा अविपक्क उवायखवणादो ॥

॥१५८॥

स्वयमेव कर्मगलनं इच्छारहितानां भवति सत्त्वानाम् ।

सविपाका निर्जरा सा अविपाकोपायक्षपणतः ॥

मोक्षस्वरूपं भेदौ चाह.

जं अप्पसहावादो मूलोत्तरपयडिसंचियं मुच्चइ ।

तं मुक्खं अविरुद्धं दुविहं खलु दव्वभावगदं ॥ १५९ ॥

यदात्मस्वभावतो मूलप्रकृतिसंचितं मुच्यते ।

स मोक्षोविरुद्धो द्विविधः खलु द्रव्यभावगतः ॥

सप्ततत्त्वं नवपदार्थरूपं निगद्य तस्यैव स्वामित्वमाह गाथा-चतुष्टयेन.

जीवाइ सत्ततच्चं पण्णत्तं जे जहत्थरूवेण ।

तं चेव णवपयत्था सपुण्णपावा पुणो होंति ॥ १६० ॥

जीवादि सप्ततत्त्वं प्रज्ञप्तं यद्यथार्थरूपेण ।

तच्चैव नव पदार्थाः सपुण्यपापाः पुनर्भवन्ति ॥

सुहवेदं सुहगोदं सुहणाम सुहाउगं हवे पुण्णं ।

तव्विवरीयं पावं जाण तुमं दव्वभावेहिं ॥ १६१ ॥

शुभवेदः शुभगोत्रं शुभनाम शुभायुर्भवेत्पुण्यम् ।
तद्विपरीतं पापं जानीहि त्वं द्रव्यभावाभ्याम् ॥

अहवा कारणभूदा तेसिं च वयव्वयाइ इह भणिया ।
ते खलु पुण्णं पावं जाण इमं पवयणे भणियं ॥१६२॥

अथवा कारणभूतास्तेषां च व्रताव्रतादि इह भणितम् ।
तत्खलु पुण्यं पापं जानीहि इदं प्रवचने भणितम् ॥

अज्जीव पुण्णपावे असुद्धजीवे तहासवे बंधे ।
सामी मिच्छाइट्ठी सम्माइट्ठी हवदि सेसे ॥ १६३ ॥

अजीवे पुण्यपापे अशुद्धजीवे तथास्त्रवे बन्धे ।
स्वामी मिथ्यादृष्टिः सम्यग्दृष्टिर्भवति शेषे ॥

सम्यभूतस्य विषयिणः फलं दर्शयति.

सामी सम्मादिट्ठी जिय संवरण णिज्जरा मोक्खो ॥
सुद्धो चेयणरूवो तह जाण सुणाणपच्चक्खं ॥१६४॥

स्वामी सम्यग्दृष्टिः जीवे संवरणे निर्जरायां मोक्षे ।
शुद्धश्चेतनरूपस्तथा जानीहि सुज्ञानप्रत्यक्षः ॥

णच्चा दव्वसहावं जो ९. द्दहणगुणमंडिओ णाणी ।
चारित्तरयणपुण्णो पच्छा सो णिव्वुदिं लहई ॥१६५॥

ज्ञात्वा द्रव्यस्वभावं यः श्रद्धानगुणमण्डितो ज्ञानी ।
चारित्ररत्नपूर्णः पश्चात्स निर्वृतिं लभते ॥

इति पदार्थाधिकारः ।

तीर्थस्वामिनं नमस्कृत्य युक्तिव्याख्यानार्थमाह वीरमिति--

वीरं विसयविरत्तं विगयमलं विमलणाणसंजुत्तं ।
पणविवि वीरजिणिंदं पमाणणयलक्खणं वोच्छं ॥१६६

वीरं विषयविरक्तं विगतमलं विमलज्ञानसंयुक्तम् ।
प्रणम्य वीरजिनेन्द्रं प्रमाणनयलक्षणं वक्ष्ये ॥

आगमादेव पर्याप्ते किं युक्तिप्रयासेनेति तं प्रत्याह.

जसु णहु तिवग्गकरणं तसु ण तिवग्गस्स साहणं होई ।
वग्गतियं जइ इच्छह ता तियवग्गं मुणह पढमं ॥१६७

यस्य नहि त्रिवर्गकरणं तस्य न त्रिवर्गस्य साधनं भवति ।
वर्गत्रयं यदि इच्छथ तर्हि त्रिवर्ग मन्यध्वं प्रथमम् ॥

त्रिवर्गं निरूपयति--

णिक्खेवणयपमाणा छद्दव्वं सुद्ध एव जो अप्पा ।
तक्कं पवयणणामा अज्झप्पं होइ हु तिवग्गं ॥ १६८ ॥

निक्षेपनयप्रमाणैः षड्द्रव्यं शुद्ध एव य आत्मा ।
तर्कः प्रवचननामा अध्यात्मं भवति हि त्रिवर्गः ॥

प्रमाणस्य प्रयोजनमाह.

कज्जं सयलसमत्थं जी[illegible] साहेइ वत्थुगहणेण ।
वत्थू पमाणसिद्धं तह्मा [illegible] जाण णियमेण ॥ १६९ ॥

कार्यं सकलसमर्थं जीवः साधयति वस्तुग्रहणेन ।
वस्तु प्रमाणसिद्धं तस्मात्तज्जानीहि नियमेन ॥

प्रमाणस्य स्वरूपं दर्शयति

गेह्णइ वत्थुसहावं अविरुद्धं सम्मरूव जं णाणं ।
भणियं खु तं पमाणं पच्चक्खपरोक्खभेएहिं ॥१७०॥

गृह्णाति वस्तुस्वभावं अविरुद्धं सम्यग्रूपं यज्ज्ञानम् ।
भणितं खलु तत्प्रमाणं प्रत्यक्षपरोक्षभेदाभ्याम् ॥

प्रमाणस्य भेदं कथयति—

मइसुइ परोक्खणाणं ओहीमण हवइ वियलपच्चक्खं ।
केवलणाणं च तहा अणोवमं सयलपच्चक्खं ॥ १७१ ॥

मतिश्रुती परोक्षज्ञानं अवधिमनो भवति विकलप्रत्यक्षम् ।
केवलज्ञानं च तथा अनुपमं सकलप्रत्यक्षम् ॥

प्रमाणस्य विषयं निरूपयति—

वत्थू पमाणविसयं णयविसयं हवइ वत्थुएयंसं ।
जं दोहि णिण्णयट्ठं तं णिक्खेवे हवे विसयं ॥ १७२ ॥

वस्तु प्रमाणविषयं नयविषयो भवति वस्त्वेकांशः ।
यो द्वाभ्यां निर्णीतार्थः स निक्षेपे भवेद्विषयः ॥

नययोजनिकाक्रममाह—

णाणासहावभरियं वत्थुं गहिऊण तं पमाणेण ।
एयंतणासणट्ठं पच्छा णयजुंजणं कुणह ॥ १७३ ॥

नानास्वभावभरितं वस्तु गृहीत्वा तत्प्रमाणेन ।
एकान्तनाशनार्थं पश्चान्नययोजनं कुरुत ॥

उक्तंच गाथात्रयेणान्यस्मिन्ग्रन्थे

सवियप्प णिव्वियप्पं पमाणरूवं जिणेहि णिद्दिट्ठं ।
तहविह णया वि भणिया सवियप्पा णिव्वियप्पा वि ॥ १ ॥

सविकल्पं निर्विकल्पं प्रमाणरूपं जिनैर्निर्दिष्टम् ।
तथाविधा नया अपि भणिताः सविकल्पा निर्विकल्पा अपि ॥

अपि चोक्तम्

कालत्तयसंजुत्तं दव्वं गिह्णेइ केवलं णाणं ।
तत्थ णयेण वि गिह्णइ भूदोऽभूदो य वट्टमाणो वि ॥२॥

कालत्रयसंयुक्तं द्रव्यं गृह्णाति केवलं ज्ञानम् ।
तथा नयेनापि गृह्यते भूतोऽभूतश्च वर्तमानोऽपि ॥

अपि चोक्तम्—

मणसहियं सवियप्पं णाणचउक्कं जिणेहि णिद्दिट्ठं ।
तव्विवरीयं इयरं आगमचक्खूहि णायव्वं ॥ ३ ॥

मनःसहितं सविकल्पं ज्ञानचतुष्कं जिनैः निर्दिष्टम् ।
तद्विपरीतमितरत् आगमचक्षुभिर्ज्ञातव्यम् ॥

इति प्रमाणाधिकारः ॥

अथ नयस्वरूपमाह—

जं णाणीण वियप्पं सुअभेयं वत्थुअंससंगहणं ।
तं इह णयं पउत्तं णाणी पुण तेहि णाणेहिं ॥१७४॥

यो ज्ञानिनां विकल्पः श्रुतभेदो वस्त्वंशसंग्रहणम् ।
स इह नयः प्रोक्तो ज्ञानी पुनस्तैर्ज्ञानैः ॥

नयप्रयोजनं प्रदर्शयति—

जह्मा णयेण ण विणा होइ णरस्स सियवायपडिवत्ती ।
तह्मा सो णायव्वो एयन्तं हंतुकामेण ॥१७५॥

यस्मान्नयेन न विना भवति नरस्य स्याद्वादप्रतिपत्तिः ।
तस्मात्स ज्ञातव्य एकान्तं हन्तुकामेन ॥

एतत्समर्थनार्थं दृष्टान्तमाह-

जह सद्धाणमाई सम्मत्तं जह तवाइगुणणिलए।
धाओ वा एयरसो तह णयमूलं अणेयंतो ॥१७६॥

यथा श्रद्धानमादिः सम्यक्त्वं यथा तपआदिगुणनिलये।
ध्येयो वैकरसस्तथा नयमूलोऽनेकान्तः॥

नैकान्तेन वस्तुस्वभावः स्वार्थश्च सिद्ध्यतीत्याह-

तच्चं विस्सवियप्पं एयवियप्पेण साहए जो हु।
तस्स ण सिज्झइ वत्थू किह एयन्तं पसाहेदि ॥१७७॥

तत्त्वं विश्वविकल्पं एकविकल्पेन साध्नोति यो हि।
तस्य न सिध्यति वस्तु कथमेकान्तं प्रसाधयति॥

उक्तं चान्यस्मिन्ग्रन्थे-

पंचवर्णात्मकं चित्रं तत्र वर्णैकग्राहकम्।
क्रमाक्रमस्वरूपेण कथं गृह्णाति भो वद ॥१॥
सर्वथैकांतरूपेण यदि जानाति वास्तवं।
भूरिधर्मात्मकं वस्तु केन निश्चीयते स्फुटम्॥

स्वार्थाभिलाषिणां स्वार्थस्य मार्गमनुमार्गं च दर्शयति-

झाणं झाणब्भासं झाणस्स तहेव भावणा भणिया।
मोत्तूण झाणभासं बेहिं पिय संजुओ समणो ॥१७८॥

ध्यानं ध्यानाभ्यासो ध्यानस्य तथैव भावना भणिता।
मुक्त्वा ध्यानाभ्यासं द्वाभ्यामपि च संयुतः श्रमणः॥

झाणस्स भावणाविय ण हु सो आराहओ हवे णियमा।
जो ण विजाणइ वत्थुं पमाणणयणिच्छयं किच्चा॥१७९

ध्यानस्य भावनाया अपि च नहि स आराधको भवेन्नियमात् ।
यो न विजानाति वस्तु प्रमाणनयनिश्चय कृत्वा ॥

उक्तं चान्यस्मिन्ग्रन्थे—

प्रमाणनयनिक्षेपैर्योऽर्थान्नाभिसमीक्षते ।
युक्तं चायुक्तवद्भाति तस्यायुक्तं च युक्तवत् ॥१॥

णिच्छित्ती वत्थूणं साहइ तह दंसणम्मि णिच्छित्ति ।
णिच्छइदंसण जीवो दोह्णं आराहओ होई ॥१८०॥

निश्चितिर्वस्तूनां साधयति तथा दर्शने निश्चितिम् ।
निश्चयदर्शनजीवो द्वयोराराधको भवति ॥

एकान्तानेकान्तस्वरूपं तौ च मिथ्या सम्यगित्याह—

एयंतो एयणयो होइ अणेयंतमस्स सम्मूहो ।
तं खलु णाणवियप्पं सम्मं मिच्छं च णायव्वं ॥१८१॥

एकान्त एकनयो भवत्यनेकान्तः अस्य समूहः ।
स खलु ज्ञानविकल्पः सम्यङ्मिथ्या च ज्ञातव्यः ॥

नयदृष्टिरहितानां दोषं समुद्भाव्य तस्यैव भेदं विषयं स्वरूपं नाम न्यायं च दर्शयति—

जे णयदिट्ठिविहीणा ताण ण वत्थूसहावउवलद्धि ।
वत्थुसहावविहूणा सम्माइट्ठी कहं हुंति ॥ १८२ ॥

ये नयदृष्टिविहीनास्तेषां न वस्तुस्वभावोपलब्धिः ।
वस्तुस्वभावविहीनाः सम्यग्दृष्टयः कथं भवन्ति ॥

नयानां मूलभेदानाह—

णिच्छयववहारणया मूलिमभेया णयाण सव्वाणं ।

णिच्छयसाहणहेऊ पज्जयदव्वत्थियं मुणह ॥ १८३ ॥

निश्चयव्यवहारनयौ मूलभेदौ नयानां सर्वेषाम् ।
निश्चयसाधनहेतू पर्यायद्रव्यार्थिकौ मन्यध्वम् ॥

दो चेवय मूलणया भणिया दव्वत्थि पज्जयत्थिगया ॥
अण्णे असंखसंखा ते तब्भेया मुणेयव्वा ॥ १८४ ॥

द्वौ चैव मूलनयौ भणितौ द्रव्यार्थपर्ययार्थगतौ ।
अन्येऽसंख्यसंख्यास्ते तद्भेदा मन्तव्याः ॥

सप्तनयाँस्त्रीनुपनयाँश्चाह--

णइगम संगह ववहार तह य रिउसुत्तसद्अभिरूढा ।
एवंभूदो णव णयणेया तह उवणया तिण्णि ॥१८५॥

नैगमः संग्रहो व्यवहारस्तथाच ऋजुसूत्रशब्दसमभिरूढाः ।
एवंभूतो नव नया ज्ञेयास्तथोपनयास्त्रयः ॥

द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकनैगमादिसप्तनयानां च यथासम्भवं भेदानाह--

दव्वत्थो दहभेयं छब्भेयं पज्जयत्थियं णेयं ।
तिविहं च णइगमं तह दुविहं पुण संगहं तत्थ ॥१८६
ववहारं रिउसुत्तं दुवियप्पं सेसमाहु एक्केका ।
उत्ता इह णयभेया उवणयभेया वि पभणामो॥१८७॥

द्रव्यार्थिको दशभेदः षड्भेदः पर्यायार्थिको ज्ञेयः ।
त्रिविधश्च नैगमस्तथा द्विविधः पुनः संग्रहस्तत्र ॥
व्यवहारर्जुसूत्रौ द्विविकल्पकौ शेषा हि एकैके ।
उक्ता इह नयभेदा उपनयभेदानपि प्रभणामः॥

त्रयाणामुपनयानां नामोद्देशं प्रत्येकं भेदांश्चाह--

सब्भूदमसब्भूदं उवयरियं चेव दुविह सब्भूवं ।
तिविहं पि असब्भूवं उवयरियं जाण तिविहं पि
॥१८८॥

सद्भूतोऽसद्भूत उपचरितश्चैव द्विविधः सद्भूतः ।
त्रिविधोऽप्यसद्भूतः उपचरितो जानीहि त्रिविधः ॥

नयानां विषयमाह--

दव्वत्थिएसु दव्वं पज्जायं पज्जयत्थिए विसयं ।
सब्भूवासब्भूवे उवयरिये चदु णव तियत्थं ॥१८९॥

द्रव्यार्थिकेषु द्रव्यं पर्यायः पर्यायार्थिकेषु विषयः ।
सद्भूतासद्भूतयोरुपचरिते च द्विनवत्रिकार्थः ॥

द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकयोर्विषयमाह--

पज्जय गउणं किच्चा दव्वंपि य जो हु गिह्णए लोये ।
सो दव्वत्थिय भणिओ विवरीओ पज्जयात्थिणओ
॥१९०॥

पर्यायं गौणं कृत्वा द्रव्यमपि च यो हि गृह्णाति लोके ।
स द्रव्यार्थिको भणितो विपरीतः पर्ययार्थिकनयः ॥

सामान्येनोक्तान्द्रव्यार्थिकदशभेदान्विवृणोति तत्र तावत् कर्मोपाधिनिरपेक्षशुद्धद्रव्यार्थिकनयलक्षणमाह--

कम्माणं मज्झगदं जीवं जो गहइ सिद्धसंकासं ।
भण्णइ सो सुद्धणओ खलु कम्मोवाहिणिरवेक्खो
॥१९१॥

कर्मणां मध्यगतं जीवं यो गृह्णाति सिद्धसंकाशं ।
भण्यते स शुद्धनयः खलु कर्मोपाधिनिरपेक्षः ॥

सत्ताग्राहकशुद्धद्रव्यार्थिकनयं लक्षयति--

उप्पादवयं गउणं किच्चा जो गहइ केवला सत्ता ।
भण्णइ सो सुद्धणओ इह सत्तागाहिओ समये ॥१९२॥

उत्पादव्ययौ गौणौ कृत्वा यो गृह्णाति केवलां सत्ताम् ।
भण्यते स शुद्धनयः इह सत्ताग्राहकः समये ॥

भेदविकल्पनिरपेक्षशुद्धद्रव्यार्थिकनयं लक्षयति--

गुणगुणिआइचउक्के अत्थे जो णो करेइ खलु भेयं ।
सुद्धो सो दव्वत्थो भेयवियप्पेण णिरवेक्खो ॥१९३॥

गुणगुण्यादिचतुष्केऽर्थे यो न करोति खलु भेदं ।
शुद्धः स द्रव्यार्थिकः भेदविकल्पेन निरपेक्षः ॥

कर्मोपाधिसापेक्षमशुद्धद्रव्यार्थिकनयं लक्षयति--

भावे सरायमादी सव्वे जीवम्मि जो हु जंपेदि ।
सो हु असुद्धो उत्तो कम्माणोवाहिसावेक्खो ॥१९४॥

भावान्रागादीन्सर्वान्जीवे यस्तु जल्पति ।
स हि अशुद्ध उक्तः कर्मणामुपाधिसापेक्षः ॥

उत्पादव्ययसापेक्षाऽशुद्धद्रव्यार्थिकनयं लक्षयति--

उप्पादवयविमिस्सा सत्ता गहिऊण भणइ तिदयत्तं ।
दव्वस्स एयसमये जो सो हु असुद्धओ बीओ॥१९५॥

उत्पादव्ययविमिश्रां सत्तां गृहीत्वा भणति त्रितयत्वम् ।
द्रव्यस्यैकसमये यः सहि अशुद्धो द्वितीयः ॥

भेदकल्पनासापेक्षाशुद्धद्रव्यार्थिकनयं लक्षयति---

भेए सदि सम्बन्धं गुणगुणियाईहि कुणदि जो दव्वे ।
सो वि असुद्धो दिट्ठो सहिओ सो भेदकप्पेण ॥१९६॥

भेदे सति सम्बन्धं गुणगुण्यादिभिः करोति यो द्रव्ये ।
सोऽप्यशुद्धो दृष्टः सहितः स भेदकल्पनया ॥

अन्वयद्रव्यार्थिकनयं लक्षयति---

णिस्सेससहावाणं अण्णयरूवेण सव्वदव्वेहिं ।
विवहावणाहि जो सो अण्णयदव्वत्थिओ भणिदो॥१९७

निःशेषस्वभावानां अन्वयरूपेण सर्वद्रव्यैः ।
विभावनाभिः यः सोऽन्वयद्रव्यार्थिको भणितः ॥

स्वद्रव्यादिग्राहकपरद्रव्यादिग्राहकद्रव्यार्थिकनयौ लक्षयति---

सद्दव्वादिचउक्के संतं दव्वं खु गिह्णए जो हु ।
णियदव्वादिसु गाही सो इयरो होइ विवरीओ
॥१९८॥

सद्द्रव्यादिचतुष्के सद्द्रव्यं खलु गृह्णाति यो हि ।
निजद्रव्यादिषु ग्राही स इतरो भवति विपरीतः ॥

परमभावग्राहिद्रव्यार्थिकनयं लक्षयति---

गेह्णइ दव्वसहावं असुद्धसुद्धोवयारपरिचत्तं ।
सो परमभावगाही णायव्वो सिद्धिकामेण ॥१९९॥

गृह्णाति द्रव्यस्वभावं अशुद्धशुद्धोपचारपरित्यक्तम् ।
स परमभावग्राही ज्ञातव्यः सिद्धिकामेन ॥

सम्प्रति पर्यायार्थिकस्य षड्भेदाम् विवृणोति तत्र तावदनादिनि-
त्यपर्यायार्थिकं लक्षयति--

अक्किट्टिमा अणिहणा ससिसूराईण पज्जया गाही ।
जो सो अणाइणिहणो जिणभणिओ पज्जयत्थिणओ
॥२००॥

अकृत्रिमाननिधनान् शशिसूरादीनां पर्ययान् ग्राही ।
यः सोऽनादिनिधनो जिनभणितः पर्ययार्थिकः ॥

सादिनित्यपर्यायार्थिकं लक्षयति---

कम्मखयादुप्पण्णो अविणासी जो हु कारणाभावे ।
इदमेवमुच्चरंतो भण्णइ सो साइणिच्च णओ ॥२०१॥

कर्मक्षयादुत्पन्नोऽविनाशी यो हि कारणाभावे ।
इदमेवमुच्चरन् भण्यते स सादिनित्यनयः ॥

अनित्यशुद्धपर्यायार्थिकनयं लक्षयति---

सत्ता अमुक्खरूवे उप्पादवयं हि गिह्णए जो हु ।
सो हु सहावअणिच्चोगाही खलु सुद्धपज्जाओ ॥२०२

सत्ताऽमुख्यरूपे उत्पादव्ययौ हि गृह्णाति यो हि ।
सहि स्वभावानित्यो ग्राही खलु शुद्धपर्यायम् ॥

अनित्याशुद्धपर्यायार्थिकनयं लक्षयति---

जो गहइ एक्कसमये उप्पादव्वयधुवत्तसंजुत्तं ।
सो सब्भावअणिच्चो असुद्धओ पज्जयत्थिणओ
॥२०३॥

यो गृह्णात्येकसमये उत्पादव्ययध्रुवत्वसंयुक्तम् ।

स सद्भावाऽनित्योऽशुद्धः पर्यायार्थिकनयः ॥

कर्मोपाधिनिरपेक्षानित्यशुद्धपर्यायार्थिकनयं लक्षयति---

देहीणं पज्जाया सुद्धा सिद्धाण भणइ सारित्था ।
जो सो अणिच्चसुद्धो पज्जयगाही हवे स णओ ॥२०४

देहिनां पर्यायान शुद्धान् सिद्धानां भणति सदृशान् ।
यः सोऽनित्यशुद्धः पर्ययग्राही भवेत्स नयः ॥

कर्मोपाधिसापेक्षानित्यशुद्धपर्यायार्थिकनयं लक्षयति---

भणइ अणिच्चासुद्धा चउगइजीवाण पज्जया जो हु ।
होइ विभावअणिच्चो असुद्धओ पज्जयत्थिणओ ॥२०५

भणत्यनित्याशुद्धाँश्चतुर्गतिजीवानां पर्यायान्यो हि ।
भवति विभावानित्योऽशुद्धः पर्यायार्थिकनयः ।

सामान्येनोक्तान्नैगमनयत्रिभेदाँल्लक्षणपुरस्सरमुदाहरति
तत्र तावद्भूतनैगमनयमाह---

णिव्वत्तअत्थकिरिया वट्टणकाले तु जं समायरणं ।
तं भूदणइगमणयं जहज दिणे णिव्वुई वीरे ॥२०६॥

निर्वृत्तार्थक्रियायाः वर्तमानकाले तु यत्समाचरणम् ।
स भूतनैगमनयो यथाद्य दिने निर्वृतिर्वीरे ॥

भाविनैगमनयमुदाहरति---

णिप्पण्णमिव पजंपदि भाविपदत्थं णरो अणिप्पण्णं ।
अप्पत्थे जह पत्थं भण्णइ सो भाविणइगमोत्ति णओ
॥२०७॥

निष्पन्नमिव प्रजल्पति भाविपदार्थं नरोऽनिष्पन्नम् ।
अप्रस्थे यथा प्रस्थो भण्यते स भाविनैगम इति नयः ॥

वर्तमाननैगमनयमुदाहरति--

पारद्धा जा किरिया पयणविहाणादि कहइ जो सिद्धा
लोएसु पुच्छमाणो भण्णइ तं वट्टमाणणयं ॥२०८॥

प्रारब्धां यां क्रियां पचनविधानादिं कथयति यः सिद्धां ।
लोकेषु पृच्छयमानो भण्यते स वर्तमाननयः ॥

संग्रहनयं लक्षयित्वा भेदौ सूचयति--

अवरोप्परमविरोहे सव्वं अत्थित्ति सुद्धसंगहणे ।
होइ तमेव असुद्धं इगिजाइविसेसगहणेण ॥२०९॥

अपरं परमविरोधे सर्व्वमस्तीति शुद्धसंग्रहणे ।
भवति स एवाशुद्धः एकजातिविशेषग्रहणेन ॥

व्यवहारनयं लक्षयित्वा भेदौ सूचयति--

जो संगहेण गहियं भेयइ अत्थं असुद्ध सुद्धं वा ॥
सो ववहारो दुविहो असुद्धसुद्धत्थभेदकरो ॥२१०॥

यः संग्रहेण गृहीतं भिनत्ति अर्थमशुद्धं शुध्दं वा ।
स व्यवहारो द्विविधोशुद्धशुद्धार्थभेदकरः ॥

ऋजुसूत्रनयं लक्षयित्वा भेदौ संसूच्य प्रथमभेदमुदाहरति--

जो एयसमयवट्टी गेह्णइ दव्वे धुवत्तपज्जाओ ।
सो रिउसुत्तो सुहुमो सव्वं सद्दं जहा खणियं ॥ २११ ॥

य एकसमयवर्तिनं गृह्णाति द्रव्ये ध्रुवत्वपर्यायम् ।
स ऋजुसूत्रः सूक्ष्मः सर्वः शब्दो यथा क्षणिकः ॥

द्वितीयभेदमुदाहरति--

मणुवाइयपज्जाओ मणुसोत्ति सगठिदीसु वट्टंतो ।
जो भणइ तावकालं सो थूलो होइ रिउसुत्तो ॥२१२॥

मनुजादिपर्यायः मनुष्य इति स्वकस्थितिषु वर्तमानः ।
यो भणति तावत्कालं स स्थूलो भवति ऋजुसूत्रः ॥

शब्दनयं लक्षयति गाथाद्वयेन---

जो वट्टणं ण मण्णइ एयत्थे भिण्णलिंगआईणं ।
सो सद्दणओ भणिओ णेओ पुंसाइआण जहा ॥२१३॥
अहवा सिद्धे सद्दे कीरइ जं किंपि अत्थववहरणं ।
सो खलु सद्दे विसओ देवोसद्देण जह देवो ॥ २१४ ॥

यो वर्तनं न मन्यते एकार्थे भिन्नलिङ्गादीनाम् ।
स शब्दनयो भणितः ज्ञेयः पुंसादिकानां यथा ।
अथवा सिद्धे शब्दे क्रियते यत्किमपि अर्थव्यवहरणम् ।
स खलु शब्दे विषयः देवशब्देन यथा देवः ॥

समभिरूढनयं लक्षयति---

सद्दारूढो अत्थो अत्थारूढो तहेव पुण सद्दो ।
भणइ इह समभिरूढो जह इंद पुरंदरो सक्को ॥२१५॥

शब्दारूढोऽर्थोऽर्थारूढस्तथैव पुनः शब्दः ।
भणतीह समभिरूढो यथेन्द्रः पुरन्दरः शक्रः ॥

एवंभूतनयं लक्षयति--

जं जं करेइ कम्मं देही मणवयणकायचेट्ठादो ।
तं तं खु णामजुत्तो एवंभूदो हवे स णओ ॥२१६॥

यद्यत्करोति कर्म देही मनोवचनकायचेष्टातः ।
तत्तत् खलु नामयुत एवंभूतो भवेत्स नयः ॥

एतेषु नैगमादिषु नयेषु द्रव्यार्थिकं पर्यायार्थिकं अर्थप्रधानं शब्दप्रधानं वा विभजते--

पढमतिया दव्वत्था पज्जयगाही य इयर जे भणिया ।
ते चदु अत्थपहाणा सद्दपहाणा हु तिण्णियरा ॥२१७॥

प्रथमत्रिका द्रव्यार्थिकाः पर्यायग्राहिणश्चेतरे ये भणिताः ।
ते चत्वारोर्थप्रधानाः शब्दप्रधाना हि त्रय इतरे ॥

पण्णवण भाविभूदे अत्थे इच्छदि य वट्टणं जो सो ।
सव्वेसिं च णयाणं उवरिं खलु संपलोइज्जा ॥२१८॥

प्रज्ञापनं भाविभूतेर्थे इच्छति च वर्तनं यः सः ।
सर्वेषां च नयानामुपरि खलु सम्प्रलोक्यः ॥

एतत्त्रयमन्तर्भावयात--

पण्णवण भाविभूदे अत्थे जो सो हु भेदपज्जाओ ।
अह तं एवंभूदो संभवदो मुणह अत्थेसु २१९॥

प्रज्ञापनं भाविभूतेर्थे यः स हि भेदपर्यायः ।
अथ स एवम्भूतः संभवतो मन्यध्वमर्थेषु ॥

गुणगुणिपज्जयदव्वे कारकसब्भावदो य दव्वेसु ।
तो णाऊणं भेयं कुणयं सब्भूयसुद्धियरो ॥२२०॥

गुणगुणिपर्यायद्रव्ये कारकसद्भावतश्च द्रव्येषु ।
ततो ज्ञात्वा भेदं क्रियते सद्भूतशुद्धिकरः ॥

दव्वाणं खु पएसा बहुगा ववहारदो य एकेण ।

अण्णाण य णिच्छयदो भाणिया का तत्थ खलु हवे जुत्ती ॥

द्रव्याणां खलु प्रदेशा बहुका व्यवहारतश्चैकेन ।
अन्येन च निश्चयतो भणिताः का तत्र खलु भवेद्युक्तिः ॥

तदुच्यते,

...राश्रयाद्यश्च संख्यातीतप्रदेशवान् ।
अभिन्नात्मैकदेशित्वादेकदेशोपि निश्चयात् ॥१॥
अणुगुरुदेहपमाणो उवसंहारप्पसप्पदो चेदा ।
असमुहदो ववहारा णिच्छयणयदो असंखदेसो वा ॥२॥
अणुगुरुदेहप्रमाणः उपसंहारप्रसर्पतश्चेतयिता ।
असमुद्गतो व्यवहारान्निश्चयनयतोऽसंख्यदेशो वा ॥३॥

एक्कपएसे दव्वं णिच्छयदो भेयकप्पणारहिए ।
सब्भूए णो बहुगा तस्स य ते भेयकप्पणासहिए ॥२२१

एकप्रदेशे द्रव्यं निश्चयतो भेदकल्पनारहिते ।
सद्भूते न बहुकास्तस्य च ते भेदकल्पनासहिते ॥

असद्भूतव्यवहारनयलक्षणं भेदांश्च कथयति,

अण्णेसिं अण्णगुणो भणइ असब्भूद तिविह ते दोण्णि ।
सज्जाइ इयर मिस्सो णायव्वो तिविहभेयजुदो ॥२२२॥

अन्येषामन्यगुणो भण्यतेऽसद्भूतस्त्रिविधस्तौ द्वावपि ।
सज्जातिरितरो मिश्रो ज्ञातव्यस्त्रिविधभेदयुतः ॥

असद्भूतव्यवहारनयभेदान्दर्शयति

दव्वगुणपज्जयाणं उवयारं ताण होइ तत्थेव ।

दव्वे गुणपज्जाया गुण दवियापज्जया णेया ॥२२४॥
द्रव्यगुणपर्यायाणां उपचारस्तेषां भवति तत्रैव।
द्रव्ये गुणपर्याया गुणे द्रव्यपर्यया ज्ञेयाः ॥

पज्जाए दव्वगुणा उवयरियं वा हु बंधसंजुत्ता।
संबंधो संसिलेसो णाणीणं णाणणेयमादीहिं ॥२२५॥
पर्याये द्रव्यगुणा उपचरितमिव हि बंधसंयुक्ताः।
संबंधःसंश्लेषः ज्ञानिनां ज्ञानज्ञेयादिभिः ॥

स्वजातीयपर्याये स्वजातिपर्यायारोपणोऽसद्भूतव्यवहारः

दट्ठूणं पडिबिंबं भवदि हु तं चेव एस पज्जाओ।
सज्जाइ असब्भूओ उवयरिओ णियजाइपज्जाओ ॥२२६॥
दृष्ट्वा प्रतिबिंबं भवति हि स चैवैष पर्यायः।
स्वजात्यसद्भूतोपचरितो निजजातिपर्यायः ॥

विजातिगुणे विजातिगुणारोपणोसद्भूतव्यवहारः

मुत्तं इह मइणाणं मुत्तिमदव्वेण जणिओ जह्मा।
जइ णहु मुत्तं णाणं तो किं खलिओ हु मुत्तेण ॥२२७॥
मूर्तमिह मतिज्ञानं मूर्तिमद्द्रव्येण जनितं यस्मात्।
यदि नहि मूर्तं ज्ञानं तर्हि किं स्खलितं मूर्तेन ॥

स्वजातिविजातिद्रव्ये स्वजातिविजातिगुणारोपणं असद्भूत-व्यवहारः-

णेयं जीवमजीवं तं पिय णाणं खु तस्स विसयादो।
जो भणइ एरिसत्थं सो ववहारो असब्भूदो ॥२२८॥

ज्ञेयं जीवमजीवं तदपि च ज्ञानं खलु तस्य विषयात् ।
यो भणत्येतादृशं व्यवहारः सोऽसद्भूतः ॥

स्वजातिद्रव्ये स्वजातिविभावपर्यायारोपणोऽसद्भूतव्यवहार.

परमाणु एयदेसी बहुप्पदेसी य जंपदे जो हु ।
सो ववहारो णेओ दव्वे पज्जायउवयारो ॥२२७॥
परमाणुरेकदेशी बहुप्रदेशी च जल्पति यो हि ।
सः व्यवहारो ज्ञेयो द्रव्ये पर्यायोपचारः ॥

स्वजातिगुणे स्वजातिद्रव्यारोपणोऽसद्भूतव्यवहारः-

रूवं पि भणइ दव्वं ववहारो अण्णअत्थसंभूदो ।
सो खलु जधोपदेसं गुणेसु दव्वाण उवयारो ॥२२८॥
रूपमपि भणति द्रव्यं व्यवहारोऽन्यार्थसम्भूतः ।
स खलु यथोपदेशं गुणेषु द्रव्याणामुपचारः ॥

स्वजातिगुणे स्वजातिपर्यायारोपणोऽसद्भूतो व्यवहारः.

णाणं पि हु पज्जायं परिणममाणो दु गिह्णए जह्मा ।
ववहारो खलु जंपइ गुणेसु उवयरियपज्जाओ ॥२२९॥
ज्ञानमपि हि पर्यायः परिणममानस्तु गृह्यते यस्मात् ।
व्यवहारः खलु जल्पते गुणेषूपचरितपर्यायः ॥

स्वजातिविभावपर्याये स्वजातिद्रव्यारोपणोऽसद्भूतोपचारः

दट्ठूण थूलखंधं पुग्गलदव्वेत्ति जंपए लोए ।

उवयारो पज्जाए पुग्गलदव्वस्स भणइ ववहारो ॥२३०॥

दृष्ट्वा स्थूलस्कंधं पुद्गलद्रव्यमिति जल्प्यते लोके ।

उपचारः पर्याये पुद्गलद्रव्यस्य भणति व्यवहारः ॥

स्वजातिपर्याये स्वजातिगुणारोपणोसद्भूतव्यवहारः-

दट्ठूण देहठाणं वण्णंतो होइ उत्तमं रूवं ।

गुणउवयारो भणिओ पज्जाए णत्थि संदेहो ॥२३१॥

दृष्ट्वा देहस्थानं वर्ण्यमानं भवत्युत्तमं रूपम् ।

गुणोपचारो भणितः पर्याये नास्ति सन्देहः ॥

सव्वत्थ पज्जयादो संतो भणिओ जिणेहि ववहारो ।

जस्स ण हवेइ संतो हेऊ दोह्णंपि तस्स कुदो ॥२३२॥

सर्वत्र पर्यायतोऽस्ति भणितो जिनैर्व्यवहारः ।

यस्य न भवेत्सत्वं हेतुर्द्वयोरपि तस्य कुतः ॥

चउगइ इह संसारो तस्स य हेऊ सुहासुहं कम्मं ।

जइ तह मिच्छा किह सो संसारो संखमिव तस्समए ॥२३३॥

चतुर्गतिरिह संसारस्तस्य च हेतुः शुभाशुभं कर्म ।

यदि तथा मिथ्या कथं स संसारः सांख्य इव तत्समये ॥

एइंदियादिदेहा जीवा ववहारदो य जिणदिट्ठा ।

हिंसादिसु जइ पापं सव्वत्थवि किं ण ववहारो ॥२३४॥

एकेन्द्रियादिदेहा जीवा व्यवहारतश्च जिनदृष्टाः ।

हिंसादिषु यदि पापं सर्वत्रापि किं न व्यवहारः ॥

बंधे च मोक्ख हेऊ अण्णो ववहारदो य णायव्वो।
णिच्छयदो पुण जीवो भणिओ खलु सव्वदरसीहिं
॥ २३५ ॥

बंधे च मोक्षे हेतुरन्यो व्यवहारतश्च ज्ञातव्यः ।
निश्चयतः पुनर्जीवो भणितः खलु सर्वदर्शिभिः ॥

जो चिय जीवसहावो णिच्छयदो होइ सव्वजीवाणं ।
सो चिय भेदुवयारा जाण फुडं होइ ववहारो ॥२३६॥

यश्चैव जीवस्वभावः निश्चयतो भवति सर्वजीवानाम् ।
स चैव भेदोपचाराज्जानीहि स्फुटं भवति व्यवहारः ॥

भेदुवयारं णिच्छय मिच्छादिट्ठीण मिच्छरूवं खु ।
सम्मे सम्मा भणिया तेहि दु बन्धो व मोक्खो वा
॥ २३७ ॥

भेदोपचारो निश्चयो मिथ्यादृष्टीनां मिथ्यारूपः खलु ।
सम्यक्त्वे सम्यक् भणितो तैस्तु बन्धो वा मोक्षो वा ॥

ण मुणइ वत्थुसहावं अह विवरीयं णिरवेक्खदो मुणइ ।
तं इह मिच्छाणाणं विवरीयं सम्मरूवं खु ॥ २३८ ॥

न मिनोति वस्तुस्वभावं अथ विपरीतं निरपेक्षतो मिनोति ।
तदिह मिथ्याज्ञानं विपरीतं सम्यग्रूपं खलु ॥

णो उवयारं कीरइ णाणस्स य दंसणस्स वा णेए ।
किह णिच्छित्ती णाणं अण्णोसिं होइ णियमेण ॥२३९॥

नो उपचारः क्रियते ज्ञानस्य च दर्शनस्य वा ज्ञेये ।

कथं निश्चितिर्ज्ञानं अन्येषां भवति नियमेन ॥

असद्भूतव्यवहारः–

उवयारा उवयारं सच्चासच्चेसु उहयअत्थेसु ।
सज्जाइइयरमिस्से उवयरिओ कुणइ ववहारो ।२४
उपचारादुपचारं सत्यासत्येषूभयार्थेषु ।
सजातीतरमिश्रेषु उपचरितः करोति व्यवहारः ॥

देसवई देसत्थो अत्थवणिज्जो तहेव जंपंतो ।
मे देसं मे दव्वं सच्चासच्चंपि उभयत्थं ॥२४१॥
देशपतिः देशस्थः अर्थपतिर्यः तथैव जल्पन् ।
मम देशो मम द्रव्यं सत्यासत्यमपि उभयार्थम् ॥

पुत्ताइबंधुवग्गं अहं च मम संपदादि जप्पंतो ।
उवयारासब्भूओ सजाइदव्वेसु णायव्वो ॥ २४२ ॥
पुत्रादिबंधुवर्गोहं च मम सम्पदादि जल्पन् ।
उपचारासद्भूतः स्वजातिद्रव्येषु ज्ञातव्यः ॥

आहरणहेमरयणावच्छादीया ममेति जप्पंतो ।
उवयारियअसब्भूओ विजाइदव्वेसु णायव्वो ॥२४३॥
आभरणहेमरत्नवस्त्रादि ममेति जल्पन ।
उपचरितासद्भूतो विजातिद्रव्येषु ज्ञातव्यः ॥

देसत्थरज्जदुग्गं मिस्सं अण्णं च भणइ मम दव्वं ।
उहयत्थे उवयरिदो होइ असब्भूयववहारो ॥ २४४ ॥
देशार्थराज्यदुर्गाणि मिश्रमन्यच्च भणति मम द्रव्यम् ।
उभयार्थे उपचरितो भवति असद्भूतव्यवहारः ॥

द्रव्यमाश्रित्य युक्तिः फलवतीत्याह-

जीवादिदव्वणिवहा जे भणिया विविहभावसंजुत्ता ।
ताण पयासणहेउ पमाणणयलक्खणं भणियं ॥२४५॥

जीवादिद्रव्यनिवहा ये भणिताः विविधभावसंयुक्ताः ।
तेषां प्रकाशनहेतुः प्रमाणनयलक्षणं भणितम् ॥

अस्तित्वस्वभावस्य युक्त्या प्रधानत्वं तस्मादेव प्रमाणनयविषयं चाह—

सव्वाण सहावाणं अत्थित्तं पुण सुपरमसब्भावं ।
अत्थिसहावा सव्वे अत्थित्तं सव्वभावगयं ॥२४६॥

सर्वेषां स्वभावानामस्तित्वं पुनः सुपरमस्वभावः ।
अस्तिस्वभावाः सर्वे अस्तित्वं सर्वभावगतम् ॥

इदि तं पमाणविसयं सत्तारूवं खु जं हवे दव्वं ।
णयविसयं तस्संसं सियभणितं तंपि पुव्वुत्तं ॥२४७॥

इति तत्प्रमाणविषयं सत्तारूपं खलु यद्भवेद् द्रव्यम् ।
नयविषयस्तस्यांशः स्याद्भणितं तदपि पूर्वोक्तम् ॥

युक्तियुक्तोर्थ एव सम्यक्त्वहेतुर्नेतर इत्याह-

सामण्ण अह विसेसं दव्वे णाणं हवेइ अविरोहो ।
साहइ तं सम्मत्तं णहु पुण तं तस्स विवरीयं ॥२४८॥

सामान्यमथ विशेषं द्रव्ये ज्ञानं भवत्यविरुद्धम् ।
साधयति तत्सम्यक्त्वं नहि पुनस्तत्तस्य विपरीतम् ॥

न्नभावानां यथा सम्यग्मिथ्यारूपं सापेक्षता च तथाह-

सियसावेक्खा सम्मा मिच्छारूवा हु तेहि णिरवेक्खा ।
तह्मा सियसद्दादो विसयं दोह्णंपि णायव्वं ॥२४९॥

स्यात्सापेक्षाः सम्यञ्चः मिथ्यारूपा हि तैः निरपेक्षाः ।
तस्मात्स्याच्छब्दाद्विषयो द्वयोरपि ज्ञातव्यः ॥

अवरोप्परसावेक्खं णयविसयं अह पमाणविसयं वा ।
तं सावेक्खं तत्तं णिरवेक्खं ताण विवरीयं ॥ २५० ॥

अपरापरसापेक्षो नयविषयोथ प्रमाणविषयो वा ।
तत्सापेक्षं तत्त्वं निरपेक्षं तयोर्विपरीतम् ॥

स्याद्वादलाञ्छनस्य स्वरूपं निरूपयति--

णियमणिसेहणसीलो णिपादणादो य जोहु खलु सिद्धो ।
सो सियसद्दो भणियो जो सावेक्खं पसाहेदि ॥ २५१ ॥

नियमनिषेधनशीलो निपातनाच्च यः खलु सिद्धः ।
स स्याच्छब्दो भणितः यः सापेक्षं प्रसाधयति ॥

उक्तं चान्यस्मिन्ग्रन्थे,

निसंज्ञिकोऽयं स्याच्छब्दो युक्तोऽनेकान्तसाधकः ।
निपातनात्समुद्भूतो विरोधध्वंसको मतः ॥ १ ॥
केवलज्ञानसम्मिश्रो दिव्यध्वनिसमुद्भवः ।
अत एव झिसंज्ञोयं सर्वज्ञैः परिभाषितः ॥ २ ॥
सिद्धमंत्रो यथा लोके एकोऽनेकार्थदायकः ।
स्याच्छब्दोऽपि तथा ज्ञेय एकोनेकार्थसाधकः ॥ ३ ॥

सापेक्षनिरपेक्षभंगाश्च यथा तथाचष्टे–

सत्तेव हुंति भंगा पमाणणयदुणयभेदजुत्तावि ।
सियसावेक्ख पमाणा णयेण णय दुणय णिरवेक्खा
॥ २५२ ॥

सप्तैव भवंति भंगाः प्रमाणनयदुर्णयभेदयुक्ता अपि ।
स्यात्सापेक्षं प्रमाणं नयेन नया दुर्णया निरपेक्षाः ॥

अत्थित्ति णात्थि दोवि य अव्वत्तव्वं सियेण संजुत्तं ।
अव्वत्तव्वा ते तह पमाणभंगी सुणायव्वा ॥ २५३ ॥

अस्तीति नास्ति द्वावपि अवक्तव्यं स्यात्संयुक्तम् ।
अवक्तव्यास्ते तथा प्रमाणभंगी सुज्ञातव्या ॥

सप्तभंगानामपेक्षां यथाक्रममाह–

अत्थिसहावं दव्वं सद्दव्वादीसु गाहयणएण ।
तं पिय णत्थिसहावं परदव्वादीहि गहिएण ॥२५४॥

अस्तिस्वभावं द्रव्यं सद्द्रव्यादिषु ग्राहकनयेन ।
तदपि च नास्तिस्वभावं परद्रव्यादिभिर्ग्राहकेण ॥

उहयं उहयणएण अव्वत्तव्वं च जाण समुदाए ।
ते तिय अव्वत्तव्वा णियणियणयअत्थसंजोए ॥२५५॥

उभयमुभयनयेनावक्तव्यं च जानीहि समुदाये ।
ते त्रयोऽवक्तव्या निजनिजनयार्थसंयोगे ॥

अथ दुर्णयभंगी–

अत्थित्ति णत्थि उहयं अव्वत्तव्वं तहेव पुण तिदयं ।

तह सिय णयणिरवेक्खं जाणदु दव्वे दुणयभंगी
॥ २५६ ॥

अस्तीति नास्त्युभयमवक्तव्यं तथैव पुनस्त्रितयम् ।
स्यात्तथा नयनिरपेक्षं जानातु द्रव्येषु दुर्णयभंगी ॥

सप्तभङ्गीविवरणायां ज्ञेयं भङ्गरचनोपायं धर्मधर्मिणो-वदेकत्वानेकत्वं चाह--

एकणिरुद्धे इयरो पडिवक्खो अणवरेइ सब्भावो ।
सव्वेसिं च सहावे कायव्वा होइ तह भंगी ॥ २५७ ॥

एकनिरुद्धे इतरः प्रतिपक्षोऽनुवर्तते स्वभावः ।
सर्वेषां च स्वभावे कर्तव्या भवेत्तथा भङ्गी ॥

धम्मी धम्मसहावो धम्मा पुण एकएकतण्णिट्ठा ।
अवरोप्परं विभिण्णा णायव्वा गउणमुक्खभावेण।२५८।

धर्मी धर्मस्वभावः धर्माः पुनरेकैकतन्निष्ठाः ।
अपरापरं विभिन्नाः ज्ञातव्या गौणमुख्यभावेन ॥

सापेक्षतासाधकसम्बन्धं युक्तिस्वरूपं चाह--

सियजुत्तो णयणिवहो दव्वसहावं भणेइ इह तत्थं ।
सुणयपमाणा जुत्ती णहु जुत्तिविवज्जियं तच्चं ॥२५९॥

स्याद्युक्तो नयनिवहो द्रव्यस्वभावो भणति इह तथ्यम् ।
सुनयप्रमाणा युक्तिर्नहि युक्तिविवर्जितं तत्त्वम् ॥

तत्त्वस्य हेयोपादेयत्वमाह--

तच्चं पि हेयमियरं हेयं खलु भणिय ताण परदव्वं ।

णियदव्वं पिय जाणसु हेयादेयं च णयजोगे ॥२६०॥
तत्त्वमपि हेयमितरद्धेयं खलु भणितं तेषां परद्रव्यम् ।
निजद्रव्यमपि जानीत हेयादेयं च नययोगे ॥
मिच्छा सरागभूयो हेयो आदा हवेइ णियमेण ।
तव्विवरीयो झेओ णायव्वो सिद्धिकामेण ॥ २६१ ॥
मिथ्या सरागभूतो हेय आत्मा भवति नियमेन ।
तद्विपरीतो ध्येयो ज्ञातव्यः सिद्धिकामेन ॥

व्यवहारनिश्चययोः सामान्यलक्षणमाह---
जो सियभेदुवयारं धम्माणं कुणइ एगवत्थुस्स ।
सो ववहारो भणियो विवरीओ णिच्छयो होदि ॥२६२
यः स्याद्भेदोपचारं धर्माणां करोति एकवस्तुनः ।
स व्यवहारो भणितः विपरीतो निश्चयो भवति ॥

विषयिणः प्रधानत्वेन विषयस्याधेयत्वमाह---
एको वि झेयरूवो इयरो ववहारदो य तह भणियो ।
णिच्छयणएण सिद्धो सम्मगुतिदयेण णिय अप्पा ॥२६३॥
एकोऽपि ध्येयरूप इतरो व्यवहारतश्च तथा भणितः ।
निश्चयनयेन सिद्धः सम्यक् त्रितयेन निजात्मा ।
तिण्णि णया भूदत्था इयरा ववहारदो य तह भणिया ॥
दो चेव सुद्धरूवा एको गाही परमभावेण ॥ २६४ ॥
त्रयो नया भूतार्था इतरे व्यवहारतश्च तथा भणिताः ।
द्वौ चैव शुद्धरूपौ एको ग्राही परमभावेन ।

जं जस्स भणिय भावं तं तस्स पहाणदो य तं दव्वं ।
तह्मा झेयं भणियं जं विसयं परमगाहिस्स ॥ २६५ ॥
यो यस्य भणितो भावः स तस्य प्रधानतश्च तद्द्रव्यम् ।
तस्माद्ध्येयो भणितो यो विषयः परमग्राहिणः ॥

युक्तिसंवित्त्योः कालमाह—

तच्चाणेसणकाले समयं बुज्झेहि जुत्तिमग्गेण ।
णो आराहणसमये पच्चक्खो अणुहवो जह्मा ॥२६६॥
तत्वान्वेषणकाले समयं बुध्यस्व युक्तिमार्गेण ।
नो आराधनसमये प्रत्यक्षोऽनुभवो यस्मात् ॥

स्यादनेकांत एव तत्त्वनिर्णीतिरित्याह—

एयंते णिरवेक्खे णो सिज्झइ विविहभावगं दव्वं ।
तं तहव अणेयंता इदि बुज्झह सिय अणेयंतं ॥२६७॥
एकांते निरपेक्षे नो सिद्ध्यति विविधभावगं द्रव्यम् ।
तत्तथैवानेकांतादिति बुध्यस्व स्यादनेकांतम् ॥
उक्तं चान्यस्मिन् ग्रंथे—
जं खउवसमं णाणं सम्मगुरूवं जिणेहि पण्णत्तं ।
तं सियगाही होदि हु सपरसरूवेण णिब्भंतं ॥ २६८ ॥
यत्क्षायोपशमं ज्ञानं सम्यग्रूपं जिनैः प्रज्ञप्तम् ।
तत्स्याद्ग्राहि भवति हि स्वरूपेण निर्भ्रांतं ॥

इति नयाधिकारः ।

आगमे अध्यात्ममार्गेण निक्षेपाधिकारव्याख्यानार्थमाह—

जुत्तीसुजुत्तमग्गे जं चउभेयेण होइ खलु ठवणं ।
कज्जे सदि णामादिसु तं णिक्खेवं हवे समये ॥२६९॥

युक्तिसुयुक्तमार्गे यच्चतुर्भेदेन भवति खलु स्थापनं ।
कार्ये सति नामादिषु स निक्षेपो भवेत्समये ॥

दव्वं विविहसहावं जेण सहावेण होइ तं झेयं ।
तस्स निमित्तं कीरइ एक्कं पिय दव्व चउभेयं ॥२७०॥

द्रव्यं विविधस्वभावं येन स्वभावेन भवति तद्ध्येयम् ।
तस्य निमित्तं क्रियते एकमपि च द्रव्यं चतुर्भेदम् ॥

निक्षेपभेदानाह—

णाम ट्ठवणा दव्वं भावं तह जाण होइ णिक्खेवं ।
दव्वे सण्णा णामं दुविहं पिय तंपि विक्खायं ॥२७१॥

नाम स्थापनां द्रव्यं भावं तथा जानीहि भवति निक्षेपः ।
द्रव्ये संज्ञा नाम द्विविधमपिच तदपि विख्यातम् ॥

नामनिक्षेपोदाहरणान्दर्शयति—

मोहरजअंतराये हणणगुणादो य णाम अरिहंतो ।
अरिहो पूजाए वा सेसा णामं हवे अण्णं ॥ २७२ ॥

मोहरजःअन्तरायस्य हननगुणतश्च नाम अर्हन् ।
अर्हे—पूजायां वा शेषं नाम भवेदन्यत् ॥

स्थापनानिक्षेपभेदमुदाहरणं चाह—

सायार इयर ठवणा कित्तिम इयरा हु बिंबजा पढमा ।

—इयरा इयरा भणिया ठवणा अरिहो य णायव्वो।२७३।
साकारेतरा स्थापना कृत्रिमेतरा हि बिंबजा प्रथमा ।
इतरा इतरा भणिता स्थापनाऽर्हंश्च ज्ञातव्यः ॥

द्रव्यनिक्षेपस्य भेदप्रभेदान्सोदाहरणं निरूपयति

दव्वं खु होइ दुविहं आगमणोआगमेण जह भणियं ।
अरहंतसत्थजाणो अणजुत्तो दव्व—अरिहंतो ॥२७४॥
द्रव्यं खलु भवति द्विविधं आगमनोआगमाभ्यां यथा भणितम् ।
अर्हच्छास्त्रज्ञायकोऽन्ययुक्तो द्रव्यार्हन् ॥
णोआगमं पि तिविहं देहं णाणिस्स भावि कम्मं च ।
णाणिसरीरं तिविहं चुद चत्तं चाविदं चेति ॥२७५॥
नोआगमोऽपि त्रिविधः देहो ज्ञानिनो भावि कर्म च ।
ज्ञानिशरीरं त्रिविधं च्युतं त्यक्तं च्यावितं चेति ॥

भावनिक्षेपभेदमुदाहरति—

आगमणोआगमदो तहेव भावो वि होदि दव्वं वा ।
अरहंतसत्थजाणो आगमभावो हु अरहंतो ॥२७६॥
आगमनोआगमतस्तथैव भावोऽपि भवति द्रव्यमिव ।
अर्हच्छास्त्रज्ञायकः आगमभावो हि अर्हन् ॥
तग्गुणए य परिणदो णोआगमभाव होइ अरहंतो ।
तग्गुणएई झादा केवलणाणी हु परिणदो भणिओ ॥२७७॥
तद्गुणैश्च परिणतो नोआगमभावो भवत्यर्हन् ।
तद्गुणैर्ध्याता केवलज्ञानी हि परिणतो भणितः ॥

अह गुणपज्जयवंतं दव्वं भणियं खु अण्णसूरीहिं ।
भावं तिहूणं तस्स य तेहिं पिय एरिसं भणियं ॥२७८॥
अथ गुणपर्ययवद् द्रव्यं भणितं खलु अन्यसूरिभिः ।
भावं त्रयं तस्य च तैरपि चेदृशं भणितम् ॥
[illegible] भणियव्वं भिण्णं काऊण एसु णिक्खेवं ।
तस्सेव [illegible]सणट्ठं भणियं काऊणमिह सुत्तं ॥२७९॥
नो इष्टं भणितव्यं भिन्नं कृत्वा एषु निक्षेपम् ।
तस्यैव दर्शनार्थं भणितं कृत्वेह सूत्रम् ॥

निक्षेपान्नये एवान्तर्भावयति--

सद्देसु जाण णामं तहेव ठवणा हु थूलरिउसुत्ते ।
दव्वं पिय उवयारे भावं पज्जायमज्झगयं ॥२८०॥
शब्देषु जानीहि नाम तथैव स्थापनां हि स्थूलर्जुसूत्रे ।
द्रव्यमपि चोपचारे भावं पर्यायमध्यगतम् ॥

निक्षेपादिज्ञानस्य प्रयोजनमाचष्टे--

णिक्खेव णय पमाणं णादूणं भावयंति जे तच्चं ।
ते तत्थतच्चमग्गे लहंति लग्गा हु तत्थयं तच्चं ॥२८१॥
निक्षेपं नयं प्रमाणं ज्ञात्वा भावयन्ति ये तत्त्वम् ॥
ते तथ्यतत्त्वमार्गे लभंते लग्ना हि तथ्यं तत्त्वम् ॥
गुणपज्जयाण लक्खणं सहाव णिक्खेव णय पमाणं वा ।
जाणदि जदि सवियप्पं दव्वसहावं खु बुज्झेदि ॥२८२॥
गुणपर्यायाणां लक्षणं स्वभावं निक्षेपं नयं प्रमाणं वा ।
जानाति यदि सविकल्पं द्रव्यस्वभावं खलु बुध्यति ॥

इति निक्षेपाधिकारः ॥

दर्शनज्ञानचारित्रस्वामिनो नमस्कृत्य दर्शनादीनां व्याख्यानार्थमाह---

दंसणणाणचरित्तं सम्मय परमं च जेहि उवलद्धं ।
पणविवि ते परमेठ्ठी वोच्छेहं णाणदंसणचरित्तं ।।२८३।।

दर्शनज्ञानचरित्रं सम्यक्परमं च यैरुपलब्धम् ।
प्रणम्य तान्परमेष्ठिनो वक्ष्येहं ज्ञानदर्शनचरित्रम् ॥

व्यवहारपरमार्थाभ्यां रत्नत्रयमेव मोक्षमार्गो न शुभाशुभावित्याह-

दंसणणाणचरित्तं मग्गं मोक्खस्स भणिय दुविहं पि ।
णहु सुहमसुहं होदि हु तं पिय बंधो हवे णियमा।।२८४।।

दर्शनज्ञानचरित्रं मार्गो मोक्षस्य भणितो द्विविधोऽपि ।
नहि शुभोऽशुभो भवति हि सोऽपि च वन्धो भवेन्नियमात् ॥

परः आह—नो व्यवहारो मार्गः इत्याह

णो ववहारो मग्गो मोहो हवदि सुहासुहमिदि वयणं ।

उक्तं चान्यत्र,

णियदव्वजाणणट्ठं इयरं कहियं जिणेहि छद्दव्वं ।
तह्मा परछद्दव्वे जाणगभावो ण होइ सण्णाणं ॥

निजद्रव्यज्ञानार्थं इतरत् कथितं जिनैः षड्द्रव्यम् ।
तस्मात्परषड्द्रव्ये ज्ञायकभावो न भवति सज्ज्ञानम् ॥

णहु एसा सुन्दरा जुत्ती ॥

नहि एषा सुन्दरा युक्तिः ॥

व्यवहारविप्रतिपत्तिवादिनां निराकरणार्थमाह---

णियसमयं पि य मिच्छा अह जदु सुण्णो य तस्स सो चेदा
जाणगभावो मिच्छा उवयरिओ तेण सो भणई ॥२८५॥

[illegible]समयोपि च मिथ्या अथ यदि शून्यश्च तस्य स चेतनः ।
ज्ञाय[illegible] [illegible]ो मिथ्या उपचरितः तेन स भणति ॥

जं चिय जीवसहावं उवयारं भणिय तं पि ववहारो ।
तह्मा णहु तं मिच्छा विसेसदो भणइ सब्भावं ॥२८६॥

यश्चैव जीवस्वभाव उपचरितो भणितः सोपि व्यवहारः ।
तस्मान्नहिं स मिथ्या विशेषतो भणति स्वभावम् ॥

उपचारस्य प्रयोजनं दर्शयति---

झेओ जीवसहावो सो इह सपरावभासगो भणिओ ।
तस्स य साहणहेऊ उवयारो भणिय अत्थेसु ॥ २८७॥

ध्येयो जीवस्वभावः स इह स्वपरावभासको भणितः ।
तस्य च साधनहेतुरुपचारो भणितोर्थेषु ॥

जह सब्भूओ भणिदो साहणहेऊ अभेदपरमट्ठो ।
तह उवयारो जाणह साहणहेऊ अणुवयारे ॥ २८८ ॥

यथा सद्भूतो भणितः साधनहेतुरभेदपरमार्थे ।
तथोपचारं जानीहि साधनहेतुमनुपचारे ॥

उक्तंच गाथाद्वयेनान्यस्मिन् ग्रन्थे---

ववहारेणुवदिस्सदि णाणिस्स चरित्तदंसणं णाणं ।
ण वि णाणं ण चरित्तं ण दंसणं जाणगो सुद्धो ॥

व्यवहारेणोपदिश्यते ज्ञानिनश्चरित्रदर्शनं ज्ञानम् ।
नापि ज्ञानं न चारित्रं न दर्शनं ज्ञायकः शुद्धः ॥

जो इह सुदेण भणिओ जाणदि अप्पाणमिणं तु केवलं सुद्धं ।
तं सुयकेवलिरिसिणो भणंति लोयप्पदीपयरा ॥२८९॥

य इह श्रुतेन भणितो जानात्यात्मानमिमं तु केवलं शुद्धं ।
तं श्रुतकेवलिनमृषयो भणंति लोकप्रदीपकराः ॥

उवयारेण विजाणइ सम्मगुरूवेण जेण परदव्वं ।
सम्मगणिच्छय तेण वि सइयसहावं तु जाणंतो
॥ २९० ॥

उपचारेणापि जानाति सम्यग्रूपेण येन परद्रव्यम् ।
सम्यग्निश्चयस्तेनापि स्वीयस्वभावं तु जानन् ॥

उवसमखयमिस्साणं तिह्णं इक्को वि णहु असब्भावो ।
णो वत्तव्वो एसो जुत्ती णयपक्खसंभवा जह्मा ॥२९१॥

उपशमक्षयमिश्राणां त्रयाणामेकोऽपि नहि असद्भूतः ।
नोवक्तव्य एव युक्तिर्नयपक्षसम्भवा यस्मात् ॥

स्याच्छब्दमाहात्म्यं प्रकटयति गाथाद्वयेन—

णहु णयपक्खो मिच्छा तं पिय णेयंतदव्वसिद्धियरा ।
सियसद्दसमारूढं जिणवयणविणिग्गयं सुद्धं ॥२९२॥

नतु नयपक्षो मिथ्या सोऽपि चानेकांतद्रव्यसिद्धिकरः ।
स्याच्छब्दसमारूढो जिनवचनविनिर्गतः शुद्धः ॥

अवरोप्परसुविरुद्धा सव्वे धम्मा फुरंति जीवाणं ।

जाव ण सियसावेक्खो गहिओ वत्थूण सब्भाओ ॥२९३॥

परस्परसुविरुद्धाः सर्वे धर्माः स्फुरन्ति जीवानाम् ।
यावन्न स्यात्सापेक्षो गृहीतो वस्तूनां स्वभावः ॥

जं मुणदि सदिट्ठी सम्मगुरूवं खु होदि तं तं पि ।
जह इह वयणं मंतं मंतीणं सिद्धि मंतेण ॥२९४॥

यद्यन्मनुते सद्दृष्टिः सम्यग्रूपं खलु भवति तत्तदपि ।
यथेह वचनं मन्त्रो मंत्रिणां सिद्धिर्मन्त्रेण ॥ (१)

उक्तं चान्यस्मिन्ग्रन्थे—

य एव नित्यक्षणिकादयो नया मिथोऽनपेक्षाः स्वपरप्रणाशिनः
त एव तत्त्वं विमलस्य ते मुनेः परस्परेक्षाः स्वपरोपकारिणः ॥

व्यवहारस्य निश्चयसाधनत्वमाह—

णो ववहारेण विणा णिच्छयसिद्धी कया विणिद्दिट्ठा ।
साहणहेऊ जह्मा तस्स य सो भणिय ववहारो ।२९५।

नो व्यवहारेण विना निश्चयसिद्धिः कृता विनिर्दिष्टा ।
साधनहेतुर्यस्मात्तस्य च सो भणितो व्यवहारः ॥

तदेवमुपपत्त्या समर्थयति—

दव्वसुयादो सम्मं भावं तं चेव अप्पसब्भावं ।
तं पि य केवलणाणं संवेयणसंगदो जह्मा ॥ २९६ ॥

द्रव्यश्रुतात्सम्यग्भावः ततः चैवात्मस्वभावः ।
ततोऽपि च केवलज्ञानं संवेदनसंगतो यस्मात् ॥

उक्तं चान्यत्र ग्रंथे.—

दव्वसुयादो भावं तत्तो उहयं हवेइ संवेदं ।
तत्तो संवित्ती खलु केवलणाणं हवे तत्तो ॥ २९७ ॥

द्रव्यश्रुताद्भावस्तत उभयं भवति संवेदनम् ।
ततः संवित्तिः खलु केवलज्ञानं भवेत्ततः ॥

व्यवहारिणः कर्तृत्वप्रसंगात्कथं मुक्तिरित्याशंक्याह—

मिच्छा सरागभूदो जीवो कत्ता जिणागमे पढिदो ।
णहु विवरीओ कत्ता उपचरिओ जइवि अत्थेसु ।२९८।

मिथ्या सरागभूतो जीवः कर्ता जिनागमे पठितः ।
नहि विपरीतः कर्ता उपचरितो यद्यप्यर्थेषु ॥

उक्तस्य शुभाशुभस्य कारणं संसारस्य कारणं चाह

असुह सुहं चिय कम्मं दुविहं तं दव्वभावभेयगयं ।
तं पिय पडुच्च मोहं संसारो तेण जीवस्स ॥ २९९ ॥

अशुभं शुभं चैव कर्म द्विविधं तद्द्रव्यभावभेदगतम् ।
तदपिच प्रतीत्य मोहं संसारस्तेन जीवस्य ॥

मोहस्य भेदं कार्यं स्वरूपं च दर्शयति—

दंसणचरित्तमोहं दुविहं पि य विविहभेयसब्भावं ।
एयाणं ते भेया जे भणिया पच्चयादीहिं ॥ ३०० ॥

दर्शनचरित्रमोहो द्विविधोऽपिच विविधभेदस्वभावः ।
एतेषां ते भेदा ये भणिताः प्रत्ययादिभिः ॥

पच्चयवंतो रागा दोसामोहे य आसवा तेसिं ।

आसवदो खलु कम्मं कम्मेण य देह तं पि संसारो ॥ ३०१ ॥

प्रत्ययवंतो रागा द्वेषमोहौ चास्रवास्तेषाम् ।
आस्रवतः खलु कर्म कर्मणा च देहस्ततोपि संसारः ॥

मिच्छत्तं अण्णाणं अविरमण कसाय जोग जे भावा ।
ते इह पच्चय जीवे विसेसदो हुंति ते बहुगा ॥ ३०२ ॥

मिथ्या अज्ञानमविरमणं कषायो योगो ये भावाः ।
त इह प्रत्यया जीवे विशेषतो भवंति ते बहुकाः ॥

मिच्छत्तं पुण दुविहं मूढत्तं तह सहावणिरवेक्खं ।
तस्सोदयेण जीवो विवरीदं गेह्णए तच्चं ॥ ३०३ ॥

मिथ्यात्वं पुनर्द्विविधं मूढत्वं तथा स्वभावनिरपेक्षम् ।
तस्योदयेन जीवो विपरीतं गृह्णाति तत्त्वम् ॥

अत्थित्तं णो मण्णदि णत्थिसहावस्स जो हु सावेक्खं ।
णत्थी विय तह दव्वे मूढो मूढो दु सव्वत्थ ॥ ३०४ ॥

अस्तित्वं नो मन्यते नास्तिस्वभावस्य यद्धि सापेक्षम् ।
नास्तित्वमपिच तथा द्रव्ये मूढो मूढो हि सर्वत्र ॥

मूढो विय सुदहेदुं सहावणिरवेक्खरूवदो होदि ।
अलहंतो खवणादी मिच्छापयडीण खलु उदये ॥ ३०५ ॥

मूढोपि च श्रुतहेतुं स्वभावनिरपेक्षरूपतो भवति ।
अलभमानः क्षपणादीन्मिथ्याप्रकृतीनां खलूदये ॥

अज्ञानं लक्षयति—

संसयविमोहविब्भमजुत्तं जं तं खु होइ अण्णाणं ।

अहव कुसच्छाज्झेयं पावपदं हवदि तं णाणं ॥ ३०६ ॥
संशयविमोहविभ्रमयुक्तं यत्तत् खलु भवत्यज्ञानम् ।
अथवा कुशास्त्राध्येयं पापप्रदं भवति तज्ज्ञानम् ॥

अविरतिभेदान्दर्शयति—

हिंसा असच्च मोसो मेहुणसेवा परिग्गहेग्गहणं ।
अविरदिभेया भणिया एयाणं बहुविहा अण्णे ॥ ३०७ ॥
हिंसासत्यं मोषो मैथुनसेवा परिग्रहग्रहणम् ।
अविरतिभेदा भणिता एतेषां बहुविधा अन्ये ॥

कषायभेदान् योगभेदाँश्च निरूपयति—

कोहो व माण माया लोह कसाया हु होंति जीवाणं ।
एक्केका चउभेया किरिया हु सुहासुहं जोगं ॥२०८॥
क्रोधश्च मानो माया लोभः कषाया हि भवन्ति जीवानाम् ।
एकैके चतुर्भेदाः क्रिया हि शुभाऽशुभा योगः ॥

शुभाशुभभेदं मोहकार्यमुक्त्वा तस्यैव दृष्टान्तमाह—

मोहो व दोसभावो असुहो वा राग पावमिदि भणियं ।
सुहरागं खलु पुण्णं सुहदुक्खादी फलं ताणं ॥२०९॥
मोहश्च द्वेषभावोऽशुभो वा रागः पापमिति भणितम् ।
शुभरागः खलु पुण्यं सुखदुःखादि फलं तयोः ॥
कज्जं पडि जह पुरिसो इक्को वि अणेक्करूवमापण्णो ।
तह मोहो बहुभेओ णिद्दिट्ठो पच्चयादीहिं ॥ ३१० ॥
कार्यं प्रति यथा पुरुष एकोऽपि च अनेकरूपमापन्नः ।
तथा मोहो बहुभेदो निर्दिष्टः प्रत्ययादिभिः ॥

शुभरागस्य भेदमाह—

देवगुरुसत्थभत्तो गुणोवयारकिरियाहि संजुत्तो ।
पूजादाणाइरदो उवओगो सो सुहो तस्स ॥ २११ ॥

देवगुरुशास्त्रभक्तः गुणोपचाराक्रियानियम संयुक्तः ।
पूजादानादिरत उपयोगः स शुभस्तस्य ॥

भावत्रयाणां समुत्पत्तिहेतुं तैश्च बन्धं मोक्षं चाह—

परदो इह सुहमसुहं सुद्धं ससहावसंगदो भावं ।
सुद्धे मुंचदि जीवो बज्झदि सो इयरभावेहिं ॥ २१२ ॥

परत इह शुभोऽशुभः शुद्धः स्वस्वभावसंगतो भावः ।
शुद्धे मुच्यते जीवो बध्यते स इतरभावैः ॥

कर्मणः फलमुद्दिश्य तस्यैव कारणस्य विनाशार्थमाह—

जं किंपि सयलदुक्खं जीवाणं तं खु होइ कम्मादो ।
तं पिय कारणवंतो तह्मा तं कारणं हणह ॥ २१३ ॥

यत्किमपि सकलदुःखं जीवानां तत्खलु भवति कर्मतः ।
तदपि च कारणवत्तस्मात्तत्कारणं हन ॥

लद्धूण दुविहहेउं जीवो मोहं खवेइ णियमेण ।
अब्भंतरबहिणेयं जहा तहा सुणह वोच्छामि ॥ २१४ ॥

लब्ध्वा द्विविधहेतुं जीवो मोहं क्षपयति नियमेन ।
अभ्यन्तरं बहिर्ज्ञेयं यथा तथा शृणुत वक्ष्यामि ॥

काऊण करणलद्धी सम्मगुभावस्स [१] कुणइ जं गहणं ।
उवसमखयमिस्सादो पयडीणं तं पि णियहेऊं ॥ २१५ ॥

---

१ ' अप्पसहावस्स-आत्मस्वभावस्य ' इति पाठोपि ॥

कृत्वा करणलब्धिं सम्यग्भावस्य करोति यद्ग्रहणम् ।
उपशमक्षयमिश्रतः प्रकृतीनां तदपि निजहेतोः ॥

तित्थयरकेवलिसमणभवसुमरणसत्थदेवमहिमादी ।
इच्चेवमाइ बहुगा बाहिरहेऊ मुणेयव्वा ॥ ३१६ ॥

तीर्थंकरकेवलिश्रमणभवस्मरणशास्त्रदेवमहिमादि ।
इत्येवमादिबहुकाः बाह्या हेतवो मन्तव्याः ॥

आसण्णभव्वजीवो अणंतगुणसेढिसुद्धिसंपण्णो ।
बुज्झन्तो खलु अट्ठे खवदि स मोहं पमाणणयजोगे
॥३१७॥

आसन्नभव्यजीवः अनंतगुणश्रेणिशुद्धिसंपन्नः ।
बुध्यमानः खल्वर्थान् क्षपयति स मोहं प्रमाणनययोगैः ॥

उक्तं च—
जिणसत्थादो अत्थे पच्चक्खादीहि बुज्झदे णियमा ।
खीयदि मोहोवचयं तह्मा सत्थं समविदव्वं ॥१॥

जिनशास्त्रतोऽर्थान्प्रत्यक्षादिभिर्बुध्यते नियमात् ।
क्षपयति मोहोपचयं तस्माच्छास्त्रं समध्येतव्यम् ॥

क्षपितमोहस्य दर्शनलाभभेदं स्वरूपं चाह—

एवं उवसम मिस्सं खाइयसम्मं च केऽपि गिह्णंति ।
तिण्णिवि णएण विहिया णिच्छय सब्भूव तह असब्भूओ
॥३१८॥

एवमुपशमं मिश्रं क्षायिकसम्यक्त्वं च केऽपि गृह्णंति ।
त्रीण्यपि नयेन विहितानि निश्चयः सद्भूतस्तथाऽसद्भूतः ॥

सण्णाइभेयभिण्णं जीवादो णाणदंसणचरित्तं ।
सो सब्भूओ भणिदो पुव्वं चिय जाण ववहारो ॥३१९॥

संज्ञादिभेदभिन्नं जीवतो ज्ञानदर्शनचरित्रम् ।
स सद्भूतो भणितः पूर्वं चैव जानीहि व्यवहारम् ॥

णेयं खु जत्थ णाणं सद्धेयं जत्थ दंसणं भणियं ।
चरियं खलु चारित्तं णायव्वं तं असब्भूवं ॥३२०॥

ज्ञेयं खलु यत्र ज्ञानं श्रद्धेयं यत्र दर्शनं भणितम् ।
चर्यं खलु चारित्रं ज्ञातव्यः सोऽसद्भूतः ॥

सद्धा तच्चे दंसण तच्चेव सहावजाणगं णाणं ।
असुहणिवित्ती चरणं ववहारो मोक्खमग्गं च ॥३२१॥

श्रद्धा तत्त्वे दर्शनं तत्त्वेएव स्वभावज्ञायकं ज्ञानम् ।
अशुभनिवृत्तिश्चरणं व्यवहारो मोक्षमार्गश्च ॥

व्यवहाररत्नत्रयस्य ग्रहणोपायं साधकभावं चाह—

आणावह अहिगमदो णिसग्गभावेण केवि गिह्णंति ।
एवं हि ठाइऊणं णिच्छयभावं खु साहंति ॥३२२॥

आज्ञातोऽधिगमतो निसर्गभावेन केपि गृह्णंति ।
एवं हि स्थापयित्वा निश्चयभावं खलु साधयंति ॥

आदे तिदयसहावे णो उवयारं ण भेदकरणं च ।
तं णिच्छये हि भणियं जं तिण्णिवि होइ आदेव ॥३२३

आत्मनि त्रितयस्वभावे नो उपचारो न भेदकरणं च ।
स निश्चयैर्भणितो यतस्त्रीण्यपि भवत्यात्मैव ॥

एवं दंसणजुत्तो चरित्तमोहं च खविय सामण्णे ।
भवदि हु सो परमप्पा वट्टंतो एण मग्गेण ॥ ३२४ ॥
एवं दर्शनयुक्तश्चरित्रमोहं च क्षपयित्वा सामान्येन ।
भवति हि स परमात्मा वर्तमानोऽनेन मार्गेण ॥

इति दर्शनाधिकारः ।

श्रुतज्ञानपरिणतस्यात्मनः सम्यग्रूपस्य हेतुं स्वरूपं निश्चयं चाह–
दंसणकारणभूदं णाणं सम्मं खु होइ जीवस्स ।
तं सुयणाणं णियमा जिणवयणाविणिग्गयं परमं।३२५।
दर्शनकारणभूतं ज्ञानं सम्यक् खलु भवति जीवस्य ।
तच्छ्रुतज्ञानं नियमाज्जिनवचनविनिर्गतं परमम् ॥
वत्थूण जं सहावं जहट्ठियं णयपमाणतह सिद्धं ।
तं तह व जाणणो इह सम्मं णाणं जिणा वेंति ॥३२६॥
वस्तूनां यः स्वभावो यथास्थितो नयप्रमाणतः सिद्धः ।
तं तथैव जानदिह सम्यग्ज्ञानं जिना ब्रुवंति ॥

उक्तं चान्यस्मिन् ग्रंथे.
संसयविमोहविब्भमविवज्जियं अप्पपरसरूवस्स ।
गहणं सम्मं णाणं सायारमणेयमेयं तु ॥
संशयविमोहविभ्रमविवर्जितमात्मपरस्वरूपस्य ।

ग्रहणं सम्यग्ज्ञानं साकारमनेकभेदं तु ॥

बहिरंत परमतच्चं णच्चा णाणं खु जं ठियं णाणं ।
तं इह णिच्छयणाणं पुव्वुत्तं मुणसु ववहारं ॥ ३२७ ॥
बहिरंतः परमतत्त्वं ज्ञात्वा ज्ञानं खलु यत्स्थितं ज्ञानम् ।
तदिह निश्चयज्ञानं पूर्वोक्तं मन्यस्व व्यवहारम् ॥

अतिव्याप्तिमव्याप्तिं श्रुताध्ययने स्वार्थिनां निषेधयति—

ता सुयसायरमहणं कीरह सुपमाणमेरुमहणेण ।
सियणयफणिंदगहिए जाव ण मुणिओ हु वत्थुसब्भाओ ॥ ३२८ ॥

ततः श्रुतसागरमथनं कुर्यात् सुप्रमाणमेरुमथनेन ।
स्यान्नयफणीन्द्रं गृहीत्वा यावन्न मतो हि वस्तुस्वभावः ॥

इति ज्ञानाधिकारः ।

निश्चयसाध्यस्य व्यवहारेण साधकक्रमं प्रदर्श्य ताभ्यामपि व्याख्यानार्थं क्रममाह—

णिच्छय सज्झसरूवं सराय तस्सेव साहणं चरणं ।
तह्मा दो विय कमसो पढिज्जमाणं पबुज्झेदि ॥ ३२९ ॥

निश्चयः साध्यस्वरूपः सरागं तस्यैव साधनं चरणम् ।
तस्माद् द्वे अपि च क्रमशः पठ्यमाने प्रबुध्यस्व ॥

चारित्र वामिनः स्वरूपं निरूप्य तस्य भेदं दर्शयति--

दंसणसुद्धिविसुद्धो मूलाइगुणेहि संजुओ तहय ।
सुहदुःखाइसमाणो झाणे लीणो [*]हवे समणो॥३३०॥

दर्शनशुद्धिविशुद्धो मूलादिगुणैः संयुतस्तथा ।
सुखदुःखादिसमानो ध्याने लीनो भवेच्छ्रमणः ॥

असुहेण रायरहिओ वयाइरायेण जो हु संजुत्तो ।
सो इह भणिय सरागो मुक्को दोहूणं पि खलु इयरो
॥ ३३१ ॥

अशुभेन रागरहितो व्रतादिरागेण योहि संयुक्तः ।
स इह भणितः सरागो मुक्तो द्वाभ्यामपि खल्वितरः ॥

सम्मा वा मिच्छा विय तवोहणा समण तहय अणयारा।
होंति विराय सराया जदिरिसिमुणिणोय(×)णायव्वा
॥ ३३२ ॥

सम्यञ्चो वा-मिथ्या अपिच तपोधना श्रमणास्तथा चानगाराः ।
भवन्ति विरागा सरागा यतिऋषिमुनयश्च ज्ञातव्याः ॥

श्रद्धानादि कुर्वतो मिथ्यासम्यग्भावं यथा तथा चाह---

इंदियसोक्खणिमित्तं सद्धाणादीणि कुणइ सो मिच्छो।
तं पिय मोक्खणिमित्तं कुव्वंतो भणिय सद्दिट्ठी॥३३३॥

इन्द्रियसौख्यनिमित्तं श्रद्धानादीनि करोति स मिथ्यादृष्टिः ।
तान्यपि मोक्षनिमित्तं कुर्वन्भणितः सद्दृष्टिः ॥

---

* ' झाणणिलीणो हवे ' इत्यपि पाठः ।

+ इतरो वीतरागः ।

× ' मुणिणोण मुनयोन ' इत्यपि पाठः ।

सरागचारित्रस्य स्वरूपं भेदं च दर्शयति—

मूलुत्तरसमणगुणा धारण कहणं च पंच आयारो ।
सोही तहव सुणिट्ठा सरायचरिया हवइ एवं ॥ २३४ ॥

मूलोत्तरश्रमणगुणा धारणं कथनं च पञ्चाचारः ।
शुद्धिस्तथैव सुनिष्ठा सरागचर्या भवत्येवम् ॥

वदसमिदिंदियरोहो आवस्साचेललोचमह्णाणं ।
ठिदिभोज्ज एयभत्तं खिदिसयणमदंतघसणं च ॥२३५

व्रतसमितीन्द्रियरोध आवश्यकाऽचेललोचमस्नानम् ।
स्थितिभोजनमेकभक्तं क्षितिशयनमदन्तघर्षणं च ॥

तवपरिसहाण भेया गुणा हु ते उत्तरा य बोहव्वा ।
दंसणणाणचरित्ते तववीरिय पंचहायारं ॥२३६॥

तपःपरीषहाणां भेदा गुणा हि ते उत्तराश्च बोद्धव्याः ।
दर्शनज्ञानचरित्राणि तपोवीर्यौ पञ्चधाचारः ।

विज्जावच्चं संघे साहुसमायार तित्थअभिवड्ढी ।
धम्मक्खाण सुअत्थे सराय चरणे ण णिसिद्धं ॥२३७॥

वैयावृत्यं संघे साधुसमाचारस्तीर्थाभिवृद्धिः ।
धर्माख्यानं स्वर्थे सरागचरणे न निषिद्धम् ।

समचारिणा सह समाचरणार्थमाह—

लोगिगसद्धारहिओ चरणविहूणो तहेव अववादी ।
विवरीओ खलु तच्चे वज्जो वा ते समायारो ॥२३८॥

लौकिकश्रद्धारहितश्चरणविहीनस्तथैवापवादी ।
विपरीतः खलु तत्त्वे वर्ज्यस्तैः समाचारः ॥

अभेदानुपचारसाधेन सरागचारित्रस्यानुषंगित्वमाह--

दिक्खागहणाणुक्कम सरायचारित्तकहणवित्थारे ।
पवयणसारे पिच्छह तस्सेवय एत्थ लेस्सोक्कं ॥३३९॥

दीक्षाग्रहणानुक्रमसरागचारित्रकथनविस्तारे ।
प्रवचनसारे प्रेक्षध्वं तस्यैवात्र लेश उक्तः ॥

शुभाशुभयोर्व्यवहाररत्नत्रयस्य च फलमाह--

शुभमशुभं चिय कम्मं जीवे देहुब्भवं जणदि दुक्खं ।
दुहपडियारो पढमो णहु पुण तं पढिज्ज इयरत्थो॥३४०॥

शुभमशुभं चापि कर्म जीवे देहोद्भवं जनयति दुःखम् ।
दुःखप्रतीकारः प्रथमो नहि पुनः स पठित इतरार्थः ॥

मोत्तूणं मिच्छतियं सम्मगरयणत्तयेण संजुत्तं ।
वट्टंतो सुहचेट्ठे परंपरं तस्स णिव्वाणं ॥ ३४१ ॥

मुक्त्वा मिथ्यात्रिकं सम्यग्रत्नत्रयेण संयुक्तः ।
वर्तमानः शुभचेष्टायां परंपरं तस्य निर्वाणं ॥

सापि परापरा द्विविधा भवति

उक्तं चान्यग्रंथे

सा खलु दुविहा भणिया परापरँ जिणवरेहि सव्वेहिं ।
तब्भवगुणठाणेहिं भवंतरे होदि सिद्धि परा ॥१॥
सा खलु द्विविधा भणिता परापरा जिनवरैः सर्वैः ॥
तद्भवगुणस्थानैः भवान्तरे भवति सिद्धिः परा ॥

इति सरागचारित्राधिकार ॥

सकलसंवरनिर्जरामोक्षोपायं दर्शयन्व्यवहारस्य गौणतां दर्शयति-

उक्तं चान्यग्रन्थे

ववहारादो बंधो मोक्खो जह्मा सहावसंजुत्तो ।

तह्मा कुरु तं गउणं सहावमाराहणाकाले ॥१॥

व्यवहाराद्बन्धो मोक्षो यस्मात्स्वभावसंयुक्तः ।

तस्मात्कुरु तं गौणं स्वभावाराधनाकाले ॥

णिच्छयदो खलु मोक्खो तस्स य हेऊ हवेइ सब्भावो ।

उवयरियासब्भूओ सो विय हेऊ मुणेयव्वो ॥२॥

निश्चयतः खलु मोक्षस्तस्य च हेतुर्भवेत्स्वभावः ।

उपचरितासद्भूतः सोऽपि च हेतुर्मन्तव्यः ॥

विवरीए फुडबंधो जिणेहि भणिओ विहावसंजुत्तो ।
सो वि संसारहेऊ भणिओ खलु सव्वदरसीहिं ॥२४२॥
विपरीते स्फुटबन्धो जिनैर्भणितो विभावसंयुक्तः ।
सोऽपि संसारहेतुर्भणितः खलु सर्वदर्शिभिः॥

वीतरागचारित्राभावे कथं गौणत्वमित्याशंक्याह—
मज्झिमजहण्णुक्कस्सा सराय इव वीयरायसामग्गी ।
तह्मा सुद्धचरित्ता पंचमकाले वि देसदो अत्थि॥२४३॥
मध्यमजघन्योत्कृष्टा सराग इव वीतरागसामग्री ।
तस्मात् शुद्धचरित्राः पञ्चमकालेऽपि देशतः सन्ति ॥

उक्तं चान्यग्रन्थे—
भरहे दुस्समकाले धम्मज्झाणं हवेइ णाणिस्स ।
तं अप्पसहावठिदे णहु मण्णइ सो हु अण्णाणी ॥१॥

भरते दुष्षमकाले धर्मध्यानं भवति ज्ञानिनः ।
तस्मादात्मस्वभावस्थितो न हि मन्यते तद्धि अज्ञानम् ॥

दृष्टान्तद्वारेण अशुद्धचारित्रस्य विनाशहेतुं शुद्धिं चाह—

जह सुह णासइ असुहं तहवासुद्धं सुद्धेण खलु चरिए ।
तह्मा सुद्धुवजोगी मा वट्टउ णिंदणादीहिं॥२४४॥

यथा शुभे नश्यत्यशुभं तथैवाशुद्धं शुद्धेन खलु चरित्रेण ।
तस्माच्छुद्धोपयोगी मा वर्ततां निन्दनादिभिः ॥

आलोयणादिकिरिया जं विसकुंभेत्ति सुद्धचरियस्स ।
भणियमिह समयसारे तं जाण सुएण अत्थेण ॥२४५॥

आलोचनादिक्रियाः यद्विपकुम्भ इति शुद्धचरितस्य ।
भणितमिह समयसोर तज्जानीहि श्रुतेनार्थेन ॥

कम्मं तियालविसयं डहेइ णाणी हु णाणझाणेण ।
पडिकम्मणाइ तह्मा भणियं खलु णाणझाणं तु ॥२४६॥

कर्म त्रिकालविषयं दहति ज्ञानी हि ज्ञानध्यानेन ।
प्रतिक्रमणादि तस्माद्भणितं खलु ज्ञानध्यानं तु ॥

शुभाशुभसंवरहेतुक्रममाह—

जह व णिरुद्धं असुहं सुहेण सुहमवि तहेव सुद्धेण ।
तह्मा एण कमेण य जोई झाएउ णियआदं ॥२४७॥

यथैव निरुद्धं अशुभं शुभेन शुभमपि तथैव शुद्धेन ।
तस्मादनेन क्रमेण च योगी ध्यायतु निजात्मानम् ॥

ध्येयस्यात्मनो ग्रहणोपायं तस्यैव स्वरूपमाह—

गहिओ सो सुदणाणे पच्छा संवेयणेण झायव्वो ।

जो णहु सुदमवलंबइ सो मुज्झइ अप्पसब्भावे ॥३४८॥

गृह्यः स श्रुतज्ञाने पश्चात्संवेदनेन ध्यातव्यः ।
यो नहि श्रुतमवलम्बते स मुह्यति आत्मसद्भावे ॥

मोत्तूणं बहिचिंता चिंताणाणम्मि होइ सुदणाणं ।
तं पिय संवित्तिगयं झाणं सद्दिट्ठिणो भणियं ॥ ३४९ ॥

मुक्त्वा बहिश्चिन्तां चिन्ताज्ञाने भवति श्रुतज्ञानम् ।
तदपि च संवित्तिगतं ध्यानं सदृष्टेर्भणितम् ॥

उक्तञ्च—

दव्वसुयादो भावं भावादो होइ सव्वसण्णाणं ।
संवेयणसंवित्ति केवलणाणं तदो भणिओ ॥ १ ॥

द्रव्यश्रुताद्भावो भावतो भवति सर्व्वसंज्ञानम् ।
संवेदनसंवित्तिः केवलज्ञानं ततो भणितम् ॥

संवित्तिस्वरूपं तस्यैव स्वामित्वं भेदसामग्रीं चाह--

लक्खणदो णियलक्खे अणुहवमाणस्स जं हवे सोक्खं ।
सा संवित्ती भणिया सयलवियप्पाण णिद्दहणा ।३५०॥

लक्षणतो निजलक्ष्ये अनुभवतो यद्भवेत्सौख्यम् ।
सा संवित्तिर्भणिता सकलविकल्पानां निर्दहना ॥

समणा सराय इयरा पमादरहिया तहेव सहियाओ ।
अणुहवचायपमादो सुद्धे इयरेसु विकहाइ ॥ ३५१ ॥

श्रमणाः सरागा इतरे प्रमादरहितास्तथैव सहिताश्च ।
अनुभ त्यागप्रमादः शुद्धे इतरेषु विकथादि ॥

दुक्खं णिंदा चिंता मोहोविय णत्थि कोइ अपमत्ते ।
उप्पज्जइ परमसुहं परमप्पियणाणअणुहवणे ॥३५५॥
दुःखं निंदा चिंता मोहोऽपिच नास्ति कोप्यप्रमत्ते ।
उत्पद्यते परमसुखं पारमात्मिकज्ञानानुभवने ॥

हेयोपादेयविदो संजमतववीयरायसंजुत्तो ।
जियदुक्खाइ तहं चिय सामग्गी सुद्धचरणस्स ॥३५३॥
हेयोपादेयविदः संयमतपोवीतरागसंयुक्तः ।
जितदुःखादिः तथा चापि सामग्री शुद्धचरणस्य ॥

ध्यातुर्ध्येयस्वरूपं चारित्रनामान्तरं ध्येयस्यापि नाममालां प्राह-

सामण्णे णियबोहे वियलियपरभावपरमसब्भावे ।
तत्थाराहणजुत्तो भणिओ खलु सुद्धचारित्ती ॥३५४॥
सामान्ये निजबोधे विकलितपरभावपरमसद्भावे ।
तत्त्वाराधनायुक्तो भणितः खलु शुद्धचारित्री ॥

सामण्णं परिणामी जीवसहावं च परमसब्भावं ।
ज्झेयं गुज्भं परमं तहेव तच्चं समयसारं ॥३५५॥
सामान्यं परिणामी जीवस्वभावः च परमसद्भावम् ।
ध्येयं गुह्यं परमं तथैव तत्त्वं समयसारम् ॥

समदा तह मज्झत्थं सुद्धो भावो य वीयरायत्तं ।
तह चारित्तं धम्मो सहावआराहणा भणिया ॥३५६॥
समता तथा माध्यस्थ्यं शुद्धो भावश्च वीतरागत्वम् ।
तथा चारित्रं धर्मः स्वभावाराधना भणिता ॥

इति वीतरागचारित्राधिकारः ॥

सामान्यविशेषयोः परस्पराधारत्वेन वस्तुत्वं दर्शयति—

अत्थित्ताइसहावा सुसंठिया जत्थ सामणविसेसा ।
अवरुप्परमविरुद्धा तं णियतच्चं हवे परमं ॥३५७॥

अस्तित्वादिस्वभावाः सुसंस्थिता यत्र सामान्यविशेषाः ।
अपरापरमविरुद्धाः तन्निजतत्वं भवेत्परमम् ॥

होऊण जत्थ णट्ठा होसंति पुणोऽवि जत्थ पज्जाया ।
वट्टंता वट्टंति हु तं णियतच्चं हवे परमं ॥ ३५८ ॥

भूत्वा यत्र नष्टाः भविष्यंति पुनरपि यत्र पर्यायाः ।
वर्तमाना वर्तंते हि तन्निजतत्वं भवेत्परमम् ॥

णासंतो वि ण णट्ठो उप्पण्णो णेव संभवं जंतो ।
संतो तियालविसये तं णियतच्चं हवे परमं ॥ ३५९ ॥

नासन्नपि न नष्ट उत्पन्नो नैव सम्भवो जन्तुः ।
सन् त्रिकालविषये तन्निजतत्वं भवेत् परमम् ॥

समयसारस्य कार्यकारणत्वं कारणस्य समयस्य च
कार्यसिद्ध्यर्थं युक्तिमाह—

कारणकज्जसहावं समयं णाऊण होइ ज्झायव्वं ।
कज्जं सुद्धसरूवं कारणभूदं तु साहणं तस्स ॥ ३६० ॥

कारणकार्यस्वभावं समयं ज्ञात्वा भवति ध्यातव्यः ।
कार्यं शुद्धस्वरूपं कारणभूतं तु साधनं तस्य ॥

सुद्धो कम्मखयादो कारणसमओ हु जीवसब्भावो ।
खय पुणु सहावझाणे तह्मा तं कारणं झेयं ॥ ३६१ ॥

सुद्धः कर्मक्षयतः कारणसमयो हि जीवस्वभावः ।
क्षयः पुनः स्वभावध्याने तस्मात्तत्कारणं ध्येयम् ॥

तयोः स्वरूपं कारणसमयस्य च व्युत्पत्तिमाह-

किरियातीदो सत्थो अणंतणाणाइसंजुओ अप्पा ।
तह मज्झत्थो सुद्धो कज्जसहावो हवे समओ ॥ ३६२ ॥

क्रियातीतः शस्तोऽनन्तज्ञानादिसंयुत आत्मा ।
तथा मध्यस्थः शुद्धः कार्यस्वभावो भवेत्समयः ॥

उदयादिसु पंचह्णं कारणसमयो हु तत्थ परिणामी ।
जह्मा लद्धा हेऊ सुद्धो सो कुणइ अप्पाणं ॥३६३॥

उदयादिषु पंचानां कारणसमयो हि तत्र परिणामी ।
यस्माल्लब्ध्वा हेतुं शुद्धं स करोत्यात्मानम् ॥

कारणसमयेन कार्यसमयस्य दृष्टान्तसिद्धिमाह-

जह इह विहावहेदू असुद्धयं कुणइ आदमेवादा ।
तह सब्भावं लद्धा सुद्धो सो कुणइ अप्पाणं ॥३६४॥

यथेह विभावहेतुरशुद्धं करोत्यात्मानमात्मा ।
तथा सद्भावं लब्ध्वा शुद्धं स करोति आत्मानम् ॥

एकस्याप्युपादानहेतोः कार्यकारणत्वे न्यायमाह-

उप्पज्जंतो कज्जं कारणमप्पा णियं तु जणयंतो ।
तह्मा इह ण विरुद्धं एकस्स वि कारणं कज्जं ॥३६५॥

उत्पद्यमानः कार्यं कारणमात्मा निजं तु जनयन् ।

तस्मादिह न विरुद्धं एकस्यापि कारणं कार्यम् ॥

संवेदनहेतुमात्रेण स्वरूपसिद्धिर्भविष्यति इत्याशंक्याह—

असुद्धसंवेयणेणय अप्पा बंधेइ कम्म णोकम्मं ।
सुद्धसंवेयणेणय अप्पा मुंचेइ कम्म णोकम्मं ॥३६६॥

अशुद्धसंवेदनेन चात्मा बध्नाति कर्म नोकर्म ।
शुद्धसंवेदनेन चात्मा मुंचति कर्म नोकर्म ॥

पढमं मुत्तसरूवं मुत्तसहावेण मिस्सियं जह्मा ।
विदियं मुत्तामुत्तं सपरसरूवस्स पच्चक्खं ॥३६७॥

प्रथमं मूर्तस्वरूपं मूर्तस्वभावेन मिश्रितं यस्मात् ।
द्वितीयं मूर्तामूर्तं स्वपरस्वरूपस्य प्रत्यक्षम् ॥

हेऊ सुद्धे सिज्झइ बज्झइ इयरेण णिच्छियं जीवो ।
तह्मा दव्वं भावो गउणाइविवक्खए णेओ ॥ ३६८ ॥

हेतौ शुद्धे सिध्यति बध्यते इतरेण निश्चितं जीवः ।
तस्माद् द्रव्यं भावो गौणादिविवक्षया ज्ञेयः ॥

उक्तंच चूलिकायां—

सकलसमयसारार्थं परिगृह्य पराश्रितोपादेयवाच्यवाचकरूपं पंचपदाश्रितं श्रुतं कारणसमयसारः । भावनमस्काररूपं कार्यसमयसारः । तदाधारेण चतुर्विधधर्मध्यानं कारणसमयसारः । तदनंतरं प्रथमशुक्लध्यानं द्विचत्वारिंशभेदरूपं पराश्रितं कार्यसमयसारः। तदाश्रितभेदज्ञानं कारणसमयसारः । तदाधारीभूतं परान्मुखाकार-

स्वसंवेदनमेदरूपं कार्यसमयसारः । तत्रैवाभेदस्वरूपं परमकार्यनि-मित्तात् शुभपरिणामास्रवः । ततस्तीर्थकरनामकर्मबंधो भवति । पश्चादभ्युदयपरम्परानिःश्रेयसस्वार्थसिद्धिनिमित्तरूपं भवति । तत आसन्नभव्यस्य दर्शनचारित्रमोहोपशमात् क्षयाद्वा स्वाश्रितस्वरूपनि-रूपकं भावनिराकाररूपं सम्यग्द्रव्यश्रुतं कारणसमयसारः । तदे-कदेशसमर्थो भावश्रुतं कार्यसमयसारः । ततः स्वाश्रितोपादेयभे-दरत्नत्रयं कारणसमयसारः । तेषामेकत्वावस्था कार्यसमयसारः । तदेकदेशशुद्धतोत्कर्षमन्तर्मुखाकारं शुद्धसंवेदनं क्षायोपशमिकरूपं । ततः स्वाश्रितधर्मध्यानं कारणसमयसारः । ततः प्रथमशुक्लध्यानं कार्यसमयसारः । ततो द्वितीयशुक्लध्यानाभिधानकं क्षीणकषायस्य द्विचरमसमयपर्यंतं कार्यपरम्परा कारणसमयसारः । एवमप्रमत्तादि क्षीणकषायपर्यंतं समयं समयं प्रति कारणकार्यरूपं ज्ञातव्यम् । त-स्माद् घातिक्षये भावमोक्षो भवति । सहजपरमपारिणामिकवशात्क्षा-यिकानामनंतचतुष्टयप्रकटनं नव२वललब्धिरूपं जघन्यमध्यमो-त्कृष्टपरमात्मा साक्षात्कार्यसमयसार एव भवति । ततो द्रव्यमोक्षो भवति । अनंतरं सिद्धस्वरूपं कार्यसमयसारो भवति । एवमव-यवार्थप्रतिपत्तिपूर्विका समुदायार्थप्रतिपत्तिर्भवति इति न्यायादुपा-दानकारणसदृशं कार्यं भवति । परमचित्कलाभरणभूषितो भ-वति । सोऽपि भव्यवरपुण्डरीक एव लभते ।

"खयउवसमियविसोही देसण पाउग्ग करणलद्धी य ।
चत्तारिवि सामण्णा करणं सम्मत्तचारित्तं ॥"

इति लब्धिपञ्चकसामग्रीवशान्नान्यः । एवं कार्यकारणरूपः पराश्रितः स्वाश्रितसमयसार आत्मा कथं जानाति ? मोहावरणयोर्हीनं ज्ञानं वेत्ति । यथा बहिस्तथैवांतर्मुखाकारं स्वात्मानं पश्यति । स्फुटं एवं कार्यकारणसमयसारः स्वसंवेदनज्ञानमेव परिणमति ।

औदयिकौपशमिकक्षायोपशमिकक्षायिकपारिणामिकानां भेदमाह---

ओदयियं उवसमियं खयउवसमियं च खाइयं परमं ।
इगवीस दो वि भेया अट्ठारस णव तिहा य परिणामी
॥ ३६९ ॥

औदयिकमौपशमिकं क्षायोपशमिकं च क्षायिकं परमम् ।
एकविंशतिर्द्वावपि भेदा अष्टादश नव त्रिधा च परिणामी ॥

लेस्सा कसाय वेदा असिद्ध अण्णाण गइ अचारित्तं ।
मिच्छत्तं ओदयियं दंसण चरियं च उवसमियं ॥३७०॥

लेश्याः कषायो वेदाः असिद्धोऽज्ञानं गतिरचारित्रम् ।
मिथ्यात्वमौदयिकं दर्शनं चरितं चौपशमिकम् ॥

मिच्छातियं चउसम्मग दंसणतिदयं च पंच लद्धीओ ।
मिस्सं दंसण चरणं विरदाविरदाण चारित्तं ॥३७१॥

मिथ्यात्रिकं चत्वारि सम्यक् दर्शनत्रितयं च पंचलब्धयः ।
मिश्रं दर्शनं चरणं विरताविरतानां चारित्रम् ॥

णाणं दंसण चरणं खाइय सम्मत्त पंचलद्धीहिं ।

खाइयभेदा णेया णव होदि हु केवला लद्धी ॥३७२॥

ज्ञानं दर्शनं चरणं क्षयिकं सम्यक्त्वं पंचलब्धिभिः ।

क्षायिकभेदा ज्ञेया नव भवंति हि केवला लब्धयः ॥

निजपारिणामिकस्वभावे यावन्नात्मबुद्ध्या श्रद्धानादिकं तावद्दोषमाह--

सद्धाणणाणचरणं जाव ण जीवस्स परमसब्भावो ।

ता अण्णाणी मूढो संसारमहोवहिं भमइ ॥३७३॥

श्रद्धानज्ञानचरणं यावन्न जीवस्य परमसद्भावः ।

तावदज्ञानी मूढः संसारमहोदधिं भ्रमति ॥

तस्यैव स्वरूपं निरूप्य ध्येयत्वेन स्वीकरोति--

कम्मजभावातीदं जाणगभावं विसेसआधारं ।

तं परिणामो जीवे अचेयणं भवदि इदराणं ॥३७४॥

कर्मजभावातीतो ज्ञायकभावो विशेषाधारः ।

स परिणामो जीवे अचेतनो भवतीतरेषाम् ॥

सव्वेसिं सब्भावो जिणेहिं खलु पारिणामिओ भणिओ

तह्मा णियलाहत्थं ज्झेओ इह पारिणामिओ भावो ३७५

सर्वेषां स्वभावो जिनैः खलु पारिणामिको भणितः ।

तस्मान्निजलाभार्थं ध्येय इह पारिणामिको भावः ॥

तस्यैव संसारहेतुप्रकारं विपरीतान्मोक्षहेतुत्वमाह--

भेदुवयारे जइया वट्टदि सो विय सुहासुहाधीणो ।

तइया कत्ता भणिदो संसारी तेण सो आदा ॥३७६॥

भेदोपचारे यावद्वर्तते सोपिच शुभाशुभाधीनः ।
तावत्कर्ता भणितः संसारी तेन स आत्मा ॥

जइया तव्विवरीए आदसहावेहि संठियो होदि ।
तइया किंच ण कुव्वदि सहावलाहो हवे तेण ॥३७७॥

यदा तद्विपरीते आत्मस्वभावे हि संस्थितो भवति ।
तदा किंचिन्न करोति स्वभावलाभो भवेत्तेन ॥

अभेदानुपचरितस्वरूपं तदेव निश्चयं तस्याराधकस्य तत्रैव चर्तनं चाह---

जाणगभावो अणुहव दंसण णाणंच जाणगं तस्स ।
सुहअसुहाण णिवित्ति चरणं साहुस्स वीयरायस्स ॥३७८॥

ज्ञायकभावोऽनुभवो दर्शनं ज्ञानं च ज्ञायकस्तस्य ।
शुभाशुभयोर्निवृत्तिश्चरणं साधोर्वीतरागस्य ॥

जाणगभावो जाणदि अप्पाणं जाण णिच्छयणयेण ।
परदव्वं ववहारा मइसुइओहिमणकेवलाधारं ॥३७९॥

ज्ञायकभावो जानात्यात्मानं जानीहि निश्चयनयेन ।
परद्रव्यं व्यवहारात् मतिश्रुतावधिमनःकेवलाधारम् ॥

सद्धाणणाणचरणं कुव्वंतो तच्चणिच्छयो भणियो ।
णिच्छयचारी चेतन परदव्वं णहु भणइ मज्झं ।३८०

श्रद्धानज्ञानचरणं कुर्वतस्तत्वनिश्चयो भणितः ।
निश्चयचारी चेतनः परद्रव्यं नहि भणति मम ॥

णिच्छयदो खलु मोक्खो बंधो ववहारचारिणो जह्मा ।
तह्मा णिव्वुदिकामो ववहारं चयदु तिविहेण ॥ ३८१ ॥
निश्चयतः खलु मोक्षो बंधो व्यवहारचारिणो यस्मात् ।
तस्मान्निर्वृतिकामो व्यवहारं त्यजतु त्रिविधेन ॥

उक्तं च----

एवं मिच्छाइट्ठी णाणी णिस्संसयं हवदि पत्तो ।
जो ववहारेण मम दव्वं जाणं ण अप्पियं कुणदि ॥
एवं मिथ्यादृष्टिर्ज्ञानी निःसंशयं भवति पात्रम् ।
यो व्यवहारेण मम द्रव्यं जानन्नात्मीयं करोति ॥

दृष्टांतद्वारेण व्यवहारस्य निश्चयलोपं दर्शयति, व्यवहाररत्नत्रयस्य सम्यग्रूपं मिथ्यारूपं च दर्शयति--

जहवि चउठ्ठयलाहो सिद्धाणं सण्णिहो हवे अरिहो ।
सो चिय जह संसारी तह मिच्छा भणिय ववहारो ॥ ३८२ ॥
यथापि चतुष्टयलाभः सिद्धानां सन्निभो भवेदर्हन् ।
स चैव यथा संसारी तथा मिथ्या भणितो व्यवहारः॥

निश्चयसाधकस्य फलं सामग्रीं चाह--

मोत्तूणं बहि विसयं विसयं आदा वि वट्टदे काउं ।
तइया संवर णिज्जर मोक्खो वि य होइ साहुस्स ॥ ३८३ ॥
मुक्त्वा बहिर्विषयं विषयमात्मैव वर्तते कर्तुम् ।

तावत् संवरो निर्जरा मोक्षोऽपि च भवति साधोः ।

रुद्धक्ख जिदकसायो मुक्कवियप्पो सहावमासेज्ज ।
झाइउ जोगी एवं णियतच्चं देहपरिचत्तं ॥ ३८४ ॥

रुद्धाक्षो जितकषायो मुक्तविकल्पः स्वभावमासाद्य ।
ध्यायतु योगी एवं निजतत्वं देहपरित्यक्तम् ॥

आदा तणुप्पमाणो णाणं खलु होइ तप्पमाणं तु ।
तं संचेयणरूवं तेण हु अणुहवइ तत्थेव ॥ ३८५ ॥

आत्मा तनुप्रमाणः ज्ञानं खलु भवति तत्प्रमाणं तु ।
तत्संचेतनरूपं तेन ह्यनुभवति तत्रैव ॥

पस्सदि तेण सरूपं जाणइ तेणेव अप्पसब्भावं ।
अणुहवइ तेण रूवं अप्पा णाणप्पमाणादो ॥ ३८६ ॥

पश्यति तेन स्वरूपं जानाति तेनैवात्मस्वभावम् ।
अनुभवति तेन रूपं आत्मा ज्ञानप्रमाणतः ॥

अप्पा णाणपमाणं णाणं खलु होइ जीवपरिमाणं ।
णवि णूणं णवि अहियं जह दीवो तेण परिमाणो ॥ ३८७॥

आत्मा ज्ञानप्रमाणः ज्ञानं खलु भवति जीवपरिमाणं ।
नापि न्यूनं नाप्यधिकं यथा दीपस्तेन परिमाणं ॥

णिज्जियसासो णिप्फंदलोयणो मुक्कसयलवावारो ।
जो एहावत्थगओ सो जोई णत्थि संदेहो ॥३८८॥

निर्जितश्वासः निष्पन्दलोचनो मुक्तसकलव्यापारः ।
य इमामवस्थां गतः स योगी नास्ति सन्देहः ॥

ध्यातुरात्मनाऽतः सामग्रीप्रत्यक्षतास्वरूपं तस्यैव ग्रहणोपायं प्राह

संवेयणेण गहिओ सो इह पच्चक्खरूवदो फुरइ ।
तं सुअणाणाधीणं सुअणाणं लक्खलक्खणदो ॥३८९॥

संवेदनेन गृह्यः स इह प्रत्यक्षरूपतः स्फुरति ।
तत् श्रुतज्ञानाधीनं श्रुतज्ञानं लक्ष्यलक्षणतः ॥

लक्खणमिह भणियमादा ज्झेओ सब्भावसंगदो सोवि ॥
चेयण तह उवलद्धी दंसण णाणं च लक्खणं तस्स
॥३९०॥

लक्षणमिह भणितमात्मा ध्येयः सद्भावसंगतः सोऽपि ।
चेतनस्तथोपलब्धिः दर्शनं ज्ञानं च लक्षणं तस्य ॥

लक्खणदो तं गेह्णसु चेदा सो चेव होदि अहमेको ।
उदयं उवसम मिस्सं भावं तं कम्मणा जणियं ॥३९१॥

लक्षणतस्तं गृह्णीष्व चेतयिता स चैव भवामि अहमेकः ।
उदय उपशमो मिश्रो भावः स कर्मणा जनितः ॥

लक्खणदो तं गेह्णसु णादा सो चेव होइ अहमेको ।
उदयं उवसम मिस्सं भावं तं कम्मणा जणियं ॥३९२॥

लक्षणतस्तं गृह्णीष्व ज्ञाता स चैव भवामि अहमेकः ।
उदय उपशमो मिश्रो भावः स कर्मणा जनितः ॥

लक्खणदो तं गेह्णसु दट्ठा सो चेव होइ अहमेको ।
उदयं उवसम मिस्सं भावं तं कम्मणा जणियं ॥३९३॥

लक्षणतस्तं गृह्णीष्व द्रष्टा स चैव भवामि अहमेकः ।
उदय उपशमो मिश्रो भावः स कर्मणा जनितः ॥

लक्खणदो तं गेह्णसु उवलद्धा चेव होइ अहमेक्को ।
उदयं उवसम मिस्सं भावं तं कम्मणा जणिदं ॥३९४॥
लक्षणतस्तं गृह्णीष्व उपलब्धा चैव भवाम्यहमेकः ।
उदय उपशमो मिश्रो भावः स कर्मणा जनितः ॥

एवं गृहीतस्यात्मनो व्याप्त्या भेदभावनां करोति--
अहमेक्को खलु परमो भिण्णो कोहादु जाणगो होमि ।
एवं एकीभूदे परमाणंदो भवे चेदा ॥ ३९५ ॥
अहमेकः खलु परमो भिन्नः क्रोधाद् ज्ञायको भवामि ।
एवमेकीभूते परमानंदो भवेच्चेतनः ॥
माणो य माय लोहो सुक्खं दुक्खं च रायमादीया ।
एवं भावणहेऊ गाहाबंधेण कायव्वं ॥ ३९७ ॥
मानश्च माया लोभः सुखं दुःखं च रागादिकाः ।
एवं भावनाहेतुर्गाथाबंधेन कर्तव्यः ॥

कर्मजस्वाभाविकं भावं भावयति—
वत्थूण अंसगहणं णियत्ताविसयं तहेव सावरणं ।
तं इह कम्मे जणियं णहु पुण सो जाणगो भावो ॥३९६
वस्तूनामंशग्रहणं नियतविषयं तथैव सावरणम् ।
तदिह कर्मणि जनितं न हि पुनः स ज्ञायको भावः ॥

उक्तंच—
सो इह भणिय सहाओ जो हु गुणो पारिणामिओ जीवे

लद्धी खओवसमदो उवओगो तं पि अत्थगहणेण ॥१

स इह भणितः स्वभावो यो हि गुणः पारिणामिको जीवे ।
लब्धिः क्षयोपशमत उपयोगः सोप्यर्थग्रहणेन ॥

ध्यानप्रत्ययेषु सुखप्रत्ययस्वरूपमाह—

लक्खणदो णियलक्खं ज्झायंतो ज्झाणपच्चयं लहइ ।
सोक्खं णाणविसेसं लद्धीरिद्धीण परिमाणं ॥ ३९७ ॥

लक्षणतो निजलक्ष्यं ध्यायन्ध्यानप्रत्ययं लभते ।
सौख्यं ज्ञानविशेषो लब्धिऋद्धी न परिमाणम् ॥

इंदियमणस्स पसमज आदत्थं तहय सोक्ख चउभेयं ।
लक्खणदो णियलक्खं अणुहवणो होइ आदत्थं ॥३९८ ॥

इन्द्रियमनसोः प्रशमजमात्मोत्थं तथा च सौख्यं चतुर्भेदम् ।
लक्षणतो निजलक्ष्यं अनुभवनं भवत्यात्मार्थम् ॥

दृष्टान्तद्वारेण पारिणामिकस्वभावस्यात्मबुद्धेर्निश्चयदर्शनमाह—

सम्मगु पेच्छइ जह्मा वत्थुसहावं च जेण सद्दिट्ठी ।
तह्मा तं णियरूवं मज्झत्थो तेण मुणउ सद्दिट्ठी ॥ ३९९

सम्यक्प्रेक्षते यस्माद्वस्तुस्वभावं च येन सद्दृष्टिः ।
तस्मात्तन्निजरूपं मध्यस्थो मन्यस्व तेन सद्दृष्टिः ॥

स्वस्थतयात्मनः स्वलाभं स्वतरणोपायं चाह—

जीवो ससहावमओ कहं वि सो चेव जादपरसमओ ।
जुत्तो जइ ससहावे तो परभावं खु मुंचेदि ॥४००॥

जीवः स्वस्वभावमयः कथमपि स चैव जातपरसमयः ।
युक्तो यदि स्वस्वभावे तर्हि परभावं खलु मुञ्चति ॥

उक्तं च—

जीवो सहावणियदो अणियदगुणपज्जयत्थपरसमओ ।
जइ कुणइ सगसमयं पब्भंसदि कम्मबंधादो ॥
जीवःस्वभावनियतोऽनियतगुणपर्ययार्थपरसमयः ।
यदि करोति स्वकसमयं प्रभ्रंसते कर्मबन्धतः ॥
सुहअसुहभावरहिओ सहावसंवेअणेण वट्टंतो ।
सो णियचरियं चरदि हु पुणो पुणो तत्थ विहरंतो
॥ ४०१ ॥
शुभाशुभभावरहितः स्वभावसंवेदनेन वर्तमानः ।
स निजचरितं चरति हि पुनः पुनस्तत्र विहरन् ॥

सरागवीतरागयोः कथंचिदविनाभावित्वं वदति—

जं चिय सरायचरणे [*] भेदुवयारेण भिण्णचारित्तं ।
तं चेव वीयराये विपरीयं होइ कायव्वं ॥ ४०२ ॥
यदपिच सरागचरणे भेदोपचारेण भिन्नचारित्रम् ।
तच्चैव वीतरागे विपरीतं भवति कर्तव्यम् ।

उक्तं च

चरियं चरदि सगं सो जो परदव्वप्पभावरहिदप्पा ।
दंसणणाणवियप्पा अवियप्पं चावियप्पादो ॥
चरितं चरति स्वकं स यः परद्रव्यप्रभावरहितात्मा ।

[*] ' सरागकाले ' इत्यपि पाठः ।

दर्शनज्ञानविकल्पात् अविकल्पं चाविकल्पतः ॥

चारित्रफलमुद्दिश्य तस्यैव वृद्ध्यर्थं भावनां प्राह–

सोक्खं च परमसोक्खं जीवे चारित्तसंजुदे दिट्ठं ।
वट्टइ तं जइवग्गे अणवरयं भावणालीणे ॥ ४०३ ॥

सौख्यं च परमसौख्यं जीवे चारित्रसंयुते दृष्टम् ।
वर्तते तद् यतिवर्गेऽनवरतं भावनालीने ॥

रागादिभावकम्मा मज्झ सहावा ण कम्मजा जह्मा ।
जो संवेयणगाही सोहं णादा हवे आदा ॥ ४०४ ॥

रागादिभावकर्माणि मम स्वभावा न कर्मजा यस्मात् ।
यः संवेदनग्राही सोहं ज्ञाता भवाम्यात्मा ॥

विभावस्वभावाभावत्वेन भावनामाह–

परभावादो सुण्णो संपुण्णो जो हवेइ सब्भावे ।
जो संवेयणगाही सोहं णादा हवे आदा ॥ ४०५ ॥

परभावतः शून्यः संपूर्णो यो भवति स्वभावे ।
यः संवेदनग्राही सोहं ज्ञाता भवामि आत्मा ॥

सामान्यगुणप्रधानत्वेन भावना–

उक्तं च (१).

निश्चयो दर्शनं पुंसि बोधस्तद्बोध इष्यते ।
स्थितिरत्रैव चारित्रमिति योगसमाश्रयः ॥

---

१ आगमे इत्यधिकोपि पाठः ।

एवमेवहि चैतन्यं शुद्धनिश्चयतोऽथवा ।
कोऽवकाशो विकल्पानां तत्राखण्डैकवस्तुनि ॥

जडसब्भावं णहु मे जह्मा तं भणिय जाण जडदव्वे ।
जो संवेयणगाही सोहं णादा हवे आदा ॥ ४०६ ॥

जडस्वभावो नहि मे यस्मात्तं भणितं जानीहि जडद्रव्ये ।
यः संवेनग्राही सोऽहं ज्ञाता भवाम्यात्मा ॥

विपक्षद्रव्यस्वभावाभावत्वेन भावना--

मज्झ सहावं णाणं दंसण चरणं ण कोवि आवरणम् ।
जो संवेयणगाही सोहं णादा हवे आदा ॥ ४०७ ॥

मम स्वभावो ज्ञानं दर्शनं चरणं न किमप्यावरणम् ।
यः संवेदनग्राही सोहं ज्ञाता भवाम्यात्मा ॥

विशेषगुणप्रधानत्वेन भावना--

घाइचउक्कं चत्ता संपत्तं परमभावसब्भावं ।
जो संवेयणगाही सोहं णादा हवे आदा ॥ ४०८ ॥

घातिचतुष्कं त्यक्त्वा संप्राप्तः परमभावस्वभावम् ।
यः संवेदनग्राही सोहं ज्ञाता भवाम्यात्मा ॥

स्वस्वभावप्रधानत्वेन भावना---
सामान्यतद्विशेषाणां समर्थितं भवति इत्याह---

सामण्णं णाणाणं झाणे विसेस मुण सुस्सुभाइयं सव्वं ।
तत्थ ठिया विसेसा इदि तं वयणं मुणेयव्वं ॥४०९॥

सामान्यज्ञानं ध्याने विशेषं मन्यस्व स्वस्वभावकं सर्वम् ।
तत्र स्थिता विशेषा इति तद्वचनं मन्तव्यम् ॥

विशेषाणामुत्पत्तिविनाशयोः सामान्ये दृष्टांतमाह -

उप्पादो य विणासो गुणाण सहजेयराण सामण्णे ।
जलमिव लहरीभूदो णायव्वो सव्वदव्वेसु ॥ ४१० ॥

उत्पादश्च विनाशो गुणानां सहजेतरेषां सामान्ये ।
जलमिव लहरीभूतं ज्ञातव्यं सर्वद्रव्येषु ॥

सर्वेषामस्यैवोत्कृष्टत्वमस्यैवोपासनया दोषाभावं च दर्शयति--

एदं चिय परमपदं सारपदं वियय सासणे पढिदं ।
एदं चिय थिररूवं लाहो अस्सेव णिव्वाणं ॥ ४११॥

एतच्चैव परमपदं सारपदमपि च च शासने पठितम् ।
एतदपिच स्थिररूपं लाभोऽस्यैव निर्वाणम् ॥

कथमन्यथोक्तम्- ?

एदह्मि रदो णिच्चं संतुट्ठो होदि णिच्चमेदेण ।
एदेण होदि तित्तो तो हवदि हु उत्तमं सोक्खं ॥४१२॥

एतस्मिन् रतो नित्यं सन्तुष्टो भवति नित्यमेतेन ।
एतेन भवति तृप्तः तद्भवति हि उत्तमं सौख्यम् ॥

एदेण सयलदोसा जीवा णासंति रायमादीया ।
मोत्तूण विविहभावं एत्थे चिय संठिया सिद्धा ॥४१३॥

एतेन सकलदोषान् जीवा नाशयन्ति रागादीन् ।
मुक्त्वा विविधभावमत्रैव संस्थिताः सिद्धाः ॥

परमार्थपरिज्ञानपरिणातिफलमुपादिशति—

णादूण समयसारं तेणेव य तंपि ज्झाइदुं चेव ।
समरसिभूदा तेण य सिद्धा सिद्धालयं जंति(१) ॥४१४॥

ज्ञात्वा समयसारं तेनैव च तमपि ध्यातुं चैव ।
समरसीभूतास्तेन च सिद्धाः सिद्धालयं यांति ॥

नयचक्रकर्तृत्वहेतुमाह—

लवणं व इणं[२] भणियं णयचक्कं सयलसत्थसुद्धियरं ।
सम्माविय सुअ मिच्छा जीवाणं सुणयमग्गरहियाणं ॥४१५॥

लवणमिवैतद्भणितं नयचक्रं सकलशास्त्रशुद्धिकरम् ।
सम्यगपि च श्रुतं मिथ्या जीवानां सुनयमार्गरहितानाम् ॥

इति निश्चय(३)चारित्राधिकारः ॥

---

१ समरसिभूदो तेण य सिद्धो सिद्धालयं जाई इति एकवचना-न्तः पाठः खपुस्तकीयः ।

२ एस इति खपुस्तकीयः पाठः ।

३ वीतराग इति खपुस्तकीयः पाठः

जं सारं सारमज्झे जरमरणहरं णाणदिट्ठीहि दिट्ठं ।
जं तच्चं तच्चभूदं परमसुहमयं सव्वलोयाण मज्झे ॥
जं भावं भावयित्ता भवभयरहियं जं च पावंति ठाणं ।
तं तच्चं णाणभावं समयगुणजुदं सासयं सव्वकालं ।

यत्सारं सारमध्ये जरामरणहरं ज्ञानदृष्टिभिर्दृष्टम् ।
यत्तत्वं तत्त्वभूतं परमसुखमयं सर्वलोकानां मध्ये ॥
यं भावं भावयित्वा भवभयरहितं यच्च प्राप्नुवन्ति स्थानम् ।
तत्तत्वं ज्ञानभावः समयगुणयुतं शाश्वतं सर्वकालम् ॥

नयचक्रस्योपादेयतां प्राह—

जइ इच्छह उत्तारिदुं अण्णाणमहोवहिं सुलीलाए ।
ता णादुं कुणह मइं णयचक्के दुणयतिमिरमत्तण्डे॥४१७

यदीच्छथोत्तरितुं अज्ञानमहोदधिं सुलीलया ।
तर्हि ज्ञातुं कुरुत मतिं नयचक्रे दुर्णयतिमिरमार्तंडे ॥

सुणिऊण दोहरत्थं सिग्घं हसिऊण सुहकरो भणइ ।
एत्थ ण सोहइ अत्थो गाहाबंधेण तं भणह ॥४१८॥

श्रुत्वा दोहार्थं शीघ्रं हसित्वा शुभंकरो भणति ।
अत्र न शोभते अर्थो गाथाबन्धेन तं भणत ॥

दारियदुण्णयदणुयं परअप्पपरिक्खतिक्खखरधारं ।
सव्वण्हुविण्हुचिण्हं सुदंसणं णमह णयचक्कं॥४१९

दारितदुर्णयदणुकं परात्मपरीक्षातीक्ष्णखरधारम् ।
सर्वज्ञविष्णुचिह्नं सुदर्शनं नमत नयचक्रम् ॥

सुयकेवलीहि कहियं सुअसमुद्दअमुदमयणाणं ।
बहुभंगभंगुराविय विराजिअं णमह णयचक्कं ॥४२०

श्रुतकेवलिभिः कथितं श्रुतसमुद्रामृतमयज्ञानम् ।
बहुभंगभंगुरावृतं विराजितं नमत नयचक्रम् ॥

सियसद्दसुणयदुण्णयदणुदेहविदारणेक्कवरवीरं ।
तं देवसेणदेवं णयचक्कयरं गुरुं णमह ॥४२१॥

स्याच्छब्दसुनयदुर्णयदनुदेहविदारणैकवरवीरम् ।
तं देवसेनदेवं नयचक्रकरं गुरुं नमत ॥

दव्वसहावपयासं दोहयबंधेण आसि जं दिट्ठं ।
गाहाबंधेण पुणो रइयं माहल्ल(१)देवेण ॥ ४२२ ॥

द्रव्यस्वभावप्रकाशो दोहकबन्धेनासीद्यो दृष्टः ।
गाथाबन्धेन पुनः रचितो माहल्लदेवेन ॥

दुसमीरणेण पोयप्पेरिय(२) संतं जहा तिरं णट्ठं ।
सिरिदेवसेणमुणिणा तह णयचक्कं पुणो रइयं ॥ ४२३ ॥

---

१ ' माहिल्लदेवेण ' इति भाष्यम् ।

२ ' पोयंपेरिय ' इति मूलपुस्तके पाठ आसीत् ।

दुःम्सीरणेन पोतप्रेरितं सत् यथा तीरं नष्टम्।
श्रीदेवसेनमुनिना तथा नयचक्रं पुनारचितम्॥

ॐ

श्रीमद्देवसेनविरचिता

आलापपद्धतिः ।

(७)

गुणानां विस्तरं वक्ष्ये स्वभावानां तथैव च ।
पर्यायाणां विशेषेण नत्वा वीरं जिनेश्वरम् ॥ १ ॥

आलापपद्धतिर्वचनरचनानुक्रमेण नयचक्रस्योपरि उच्यते । सा च किमर्थम् ? द्रव्यलक्षणसिध्द्यर्थं स्वभावसिध्द्यर्थश्च । द्रव्याणि कानि ? जीवपुद्गलधर्माधर्माकाशकालद्रव्याणि । सद् द्रव्यलक्षणम्, उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् । इति द्रव्याधिकारः ।

लक्षणानि कानि ? अस्तित्वं, वस्तुत्वं, द्रव्यत्वं, प्रमेयत्वं, अगुरुलघुत्वं (१), प्रदेशत्वं (२), चेतनत्वमचेतनत्वं, मूर्तत्वममूर्तत्वं द्रव्याणां दश सामान्यगुणाः । प्रत्येकमष्टावष्टौ सर्वेषाम् ।

[एकैकद्रव्ये अष्टौ अष्टो गुणा भवंति । जीवद्रव्ये अचेतनत्वं मूर्तत्वं च नास्ति, पुद्गलद्रव्ये चेतनत्वममूर्तत्वं च नास्ति, धर्माधर्माकाशकालद्रव्येषु चेतनत्वं मूर्तत्वं च नास्ति । एवं द्विद्विगुणवर्जिते अष्टौ अष्टौ गुणाः प्रत्येकद्रव्ये भवंति [३] ।]

ज्ञानदर्शनसुखवीर्याणि स्पर्शरसगंधवर्णाः गतिहेतुत्वं स्थितिहेतु-

---

१ सूक्ष्मा अवाग्गोचरा प्रतिक्षणं वर्तमाना आगमप्रामाण्यादभ्युपगम्या अगुरुलघुगुणाः । २ क्षेत्रत्वं अविभागि पुद्गलपरमाणुनावष्टब्धम् । ३ इति खपुस्तकेऽधिकपाठः ।

त्वमवगाहनहेतुत्वं वर्त्तनाहेतुत्वं चेतनत्वमचेतनत्वं मूर्तत्वममूर्तत्वं द्रव्याणां षोडश विशेषगुणाः। षोडशविशेषगुणेषु जीवपुद्गलयोः षडिति। जीवस्य ज्ञानदर्शनसुखवीर्याणि चेतनत्वममूर्तत्वमिति षट्। पुद्गलस्य स्पर्शरसगन्धवर्णाः मूर्त्तत्वमचेतनत्वमिति षट्। इतरेषां धर्माधर्माकाशकालानां प्रत्येकं त्रयो गुणाः। धर्मद्रव्ये गतिहेतुत्वममूर्तत्वमचेतनत्वमेते त्रयो गुणाः। अधर्मद्रव्ये स्थितिहेतुत्वममूर्तत्वमचेतनत्वमिति। आकाशद्रव्ये अवगाहनहेतुत्वममूर्तत्वमचेतनत्वमिति। कालद्रव्ये वर्त्तनाहेतुत्वममूर्तत्वमचेतनत्वमिति विशेषगुणाः। अन्तस्थाश्चत्वारो गुणाः स्वजात्यपेक्षया (१) सामान्यगुणाः विजात्यपेक्षया त एव विशेषगुणाः। इति गुणाधिकारः।

गुणविकाराः पर्यायास्ते द्वेधा स्वभावविभावपर्यायभेदात् (२)। अगुरुलघुविकाराः स्वभावपर्यायास्ते द्वादशधा षड्वृद्धिरूपाः षड्हानिरूपाः। अनंतभागवृद्धिः, असंख्यातभागवृद्धिः, संख्यातभागवृद्धिः, संख्यातगुणवृद्धिः, असंख्यातगुणवृद्धिः, अनंतगुणवृद्धिः, एवं षड्वृद्धिरूपास्तथा अनंतभागहानिः, असंख्यातभागहानिः, संख्यातभागहानिः, संख्यातगुणहानिः, असंख्यातगुणहानिः, अनंतगुणहानिः एवं षड् हानिरूपा ज्ञेयाः। विभावद्रव्यव्यञ्जनपर्यायाश्चतुर्विधा नरनारकादिपर्याया अथवा चतुरशीतिलक्षा योनयः। विभावगुणव्यञ्जनपर्याया मत्यादयः। स्वभावद्रव्यव्यञ्जनपर्यायाश्चरम-

---

१ द्रव्यक्षेत्रकालभावापेक्षया। २ स्वभावपर्यायाः सर्वद्रव्येषु विभावपर्याया जीवपुद्गलयोश्च।

शरीरात्किञ्चिन्न्यूनसिद्धपर्यायाः । स्वभावगुणव्यञ्जनपर्याया अनंतचतुष्टयस्वरूपा जीवस्य । पुद्गलस्य तु द्व्यणुकादयो विभावद्रव्यव्यञ्जनपर्यायाः । रसरसांतरगंधगंधांतरादिविभावगुणव्यंजनपर्यायाः । अविभागिपुद्गलपरमाणुः स्वभावद्रव्यव्यञ्जनपर्यायः । वर्णगंधरसैकैकाविरुद्धस्पर्शद्वयं स्वभावगुणव्यञ्जनपर्यायाः ।

अनाद्यनिधने[१] द्रव्ये स्वपर्यायाः प्रतिक्षणम् ।
उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति जलकल्लोलवज्जले ॥ १ ॥
धर्माधर्मनभःकाला अर्थपर्यायगोचराः ।
व्यञ्जनेन तु संबद्धौ द्वावन्यौ जीवपुद्गलौ ॥ २ ॥

इति पर्यायाधिकारः । गुणपर्ययवद् द्रव्यम् ।

स्वभावाः कथ्यंते । अस्तिस्वभावः, [२] नास्तिस्वभावः (३), नित्यस्वभावः [४], अनित्यस्वभावः [५], एकस्वभावः (६), अनेकस्वभावः, भेदस्वभावः (७), अभेदस्वभावः, भव्यस्वभावः । अभव्यस्वभावः, परमस्वभावः (८), द्रव्याणामेकादश सामान्यस्वभावाः, चेतनस्वभावः (९) । अचेतनस्वभा-

---

१ आद्यन्तरहिते । २ स्वभावलाभादच्युतत्वादस्तिस्वभावः। ३ परस्वरूपेणाभावान्नास्तिस्वभावः । ४ निजनिजनानापर्यायेषु तदेवेदमिति द्रव्यस्योपलम्भान्नित्यस्वभावः । ५ तस्याप्यनेकपर्यायपरिणतत्वादनित्यस्वभावः । ६ स्वभावानामेकाधारत्वादेकस्वभावः । ७ गुणगुण्यादिसंज्ञाभेदाद्भेदस्वभावः । ८ पारिणामिकभावप्रधानत्वेन परमस्वभावः । ९ असद्भूतव्यवहारेण कर्मनोकर्मणोरपि चेतनस्वभावः ।

वः(१), मूर्त्तस्वभावः [२], अमूर्त्तस्वभावः, एकप्रदेशस्वभावः, अनेकप्रदेशस्वभावः, विभावस्वभावः, शुद्धस्वभावः, अशुद्धस्वभावः, उपचरितस्वभावः, एते द्रव्याणां दश विशेषस्वभावाः (३)। जीवपुद्गलयोरेकविंशतिः—चेतनस्वभावः, मूर्तस्वभावः, विभावस्वभावः, एकप्रदेशस्वभावः, अशुद्धस्वभावः, एतैः पञ्चभिः स्वभावैर्विना धर्मादित्रयाणां षोडश स्वभावाः सन्ति। तत्र बहुप्रदेशं विना कालस्य पञ्चदश स्वभावाः (४)।

एकविंशतिभावाः स्युर्जीवपुद्गलयोर्मताः।
धर्मादीनां षोडश स्युः काले पञ्चदश स्मृताः॥३॥

ते कुतो ज्ञेयाः? प्रमाणनयविवक्षातः। सम्यग्ज्ञानं प्रमाणम्। तद् द्वेधा प्रत्यक्षेतरभेदात्। अवधिमनःपर्ययावेकदेशप्रत्यक्षौ। केवलं सकलप्रत्यक्षं। मतिश्रुते परोक्षे। प्रमाणमुक्तं। तदवयवा नयाः।

नयभेदा उच्यन्ते,—

णिच्छयववहारणया (५) मूलमभेयाण ताण सव्वाणं।
णिच्छयसाहणहेओ दव्वयपज्जत्थिया मुणह॥४॥

द्रव्यार्थिकः, पर्यायार्थिकः, नैगमः, सङ्ग्रहः, व्यवहारः, ऋजु-

---

१ जीवस्याप्यसद्भूतव्यवहारेणाचेतनस्वभावः। २ जीवस्याप्यसद्भूतव्यवहारेण मूर्तस्वभावः।

३ "तत्कालपर्ययाक्रान्तं वस्तु भावोऽभिधीयते"॥ ४ तस्य एकप्रदेशसम्भवात् अत एव बहुप्रदेशत्वस्वभावाभावेपि पंचदशत्वं न संभवति किंतु तत्र उपचरितस्वभावोपि निषिध्यते तदपेक्षया पंचदशत्वं ज्ञेयं। ५ निश्चयनया द्रव्यस्थिता व्यवहारनयाः पर्यायस्थिताः।

सूत्रः, शब्दः, समभिरूढः, एवंभूत इति [illegible] । उप-
नयाश्च (१) कथ्यंते । नयानां समीपा उपनयाः । सद्भूतव्यव-
हारः असद्भूतव्यवहार उपचरितासद्भूतव्यवहारश्चेत्युपनयास्त्रेधा ।

इदानीमेतेषां भेदा उच्यंते । द्रव्यार्थिकस्य दश भेदाः ।

कर्मोपाधिनिरपेक्षः शुद्धद्रव्यार्थिको यथा, संसारी जीवः सिद्ध-
सदृक् शुद्धात्मा । उत्पादव्ययगौणत्वेन सत्ताग्राहकः शुद्धद्रव्या-
र्थिको यथा, द्रव्यं नित्यम् । भेदकल्पनानिरपेक्षः शुद्धो द्रव्या-
र्थिको यथा, निजगुणपर्यायस्वभावाद् द्रव्यमभिन्नम् । कर्मोपाधि-
सापेक्षोऽशुद्धद्रव्यार्थिको यथा, क्रोधादिकर्मजभाव आत्मा ।
उत्पादव्ययसापेक्षोऽशुद्धद्रव्यार्थिको यथैकस्मिन् समये द्रव्य-
मुत्पादव्ययध्रौव्यात्मकम् । भेदकल्पनासापेक्षोऽशुद्धद्रव्यार्थिको यथा-
त्मनो दर्शनज्ञानादयो गुणाः । अन्वयसापेक्षो द्रव्यार्थिको यथा, गु-
णपर्यायस्वभावं द्रव्यम् । स्वद्रव्यादि [२] ग्राहकद्रव्यार्थिको यथा
—स्वद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया द्रव्यमस्ति । परद्रव्यादिग्राहकद्र-
व्यार्थिको यथा—परद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया द्रव्यं नास्ति (३)। पर-
मभावग्राहकद्रव्यार्थिको यथा—ज्ञानस्वरूप आत्मा । अत्रानेक-
स्वभावानां मध्ये ज्ञानाख्यः परमस्वभावो गृहीतः ।

इति द्रव्यार्थिकस्य दश भेदाः ।

---

१ नयांशं गृहीत्वा वस्तुनोऽनेकविकल्पत्वेन कथनमुपनयः ।

२ आदिशब्देन स्वक्षेत्रस्वकालस्वभावा ग्राह्याः । ३ सुवर्णं हि
रजतादिरूपतया नास्ति रजतक्षेत्रेण रजतकालेन रजतपर्यायेण च नास्ति ।

अथ पर्यायार्थिकस्य षड् भेदा उच्यन्ते,—

अनादिनित्यपर्यायार्थिको यथा— पुद्गलपर्यायो नित्यो मेर्वादिः सादिनित्यपर्यायार्थिको यथा—सिद्धपर्यायो नित्यः। सत्तागौणत्वेनोत्पादव्ययग्राहकस्वभावो नित्याशुद्धपर्यायार्थिको यथा—समयं समयं प्रति पर्याया विनाशिनः। सत्तासापेक्षस्वभावो नित्याशुद्धपर्यायार्थिको यथा—एकस्मिन् समये त्रयात्मकः (१) पर्यायः। कर्मोपाधिनिरपेक्षस्वभावो नित्यशुद्धपर्यायार्थिको यथा सिद्धपर्यायसदृशाः शुद्धाः संसारिणां पर्यायाः। कर्मोपाधिसापेक्षस्वभावोऽनित्याशुद्धपर्यायार्थिको यथा—संसारिणामुत्पत्तिमरणे स्तः। इति पर्यायार्थिकस्य षड् भेदाः।

नैगमस्त्रेधा भूतभाविवर्त्तमानकालभेदात्। अतीते वर्त्तमानारोपण यत्र स भूतनैगमो यथा—अद्य दीपोत्सवदिनं श्रीवर्द्धमानस्वामी मोक्षं गतः। भाविनि भूतवत्कथनं यत्र स भाविनैगमो यथा—अर्हन् सिद्ध एव। कर्तुमारब्धमीषन्निष्पन्नमनिष्पन्नं वा वस्तु निष्पन्नवत्कथ्यते यत्र स वर्त्तमाननैगमो यथा—ओदनः पच्यते। इति नैगमस्त्रेधा।

संग्रहो द्विविधः। सामान्यसंग्रहो यथा—सर्वाणि द्रव्याणि परस्परमविरोधीनि। विशेषसंग्रहो यथा—सर्वे जीवाः परस्परमविरोधिनः। इति संग्रहोऽपि द्विधा।

व्यवहारोऽपि द्वेधा। सामान्यसंग्रहभेदको व्यवहारो यथा—

---

१ पूर्वपर्यायस्य विनाश उत्तरपर्यायस्योत्पादो, द्रव्यत्वेन ध्रुवत्वम्।

द्रव्याणि जीवाजीवाः । विशेषसंग्रहभेदको व्यवहारो यथा—जीवाः संसारिणो मुक्ताश्च । इति व्यवहारोऽपि द्वेधा ।

ऋजुसूत्रो द्विविधः । सूक्ष्मर्जुसूत्रो यथा—एकसमयावस्थायी पर्यायः । स्थूलर्जुसूत्रो यथा—मनुष्यादिपर्यायास्तदायुःप्रमाणकालं तिष्ठति । इति ऋजुसूत्रोऽपि द्वेधा ।

शब्दसमभिरूढैवंभूता नयाः प्रत्येकमेकैके नयाः । शब्दनयो यथा दारा भार्या कलत्रं जलं आपः । समभिरूढनयो यथा, गौः पशुः । एवंभूतनयो यथा—इंदतीति इंद्रः । उक्ता अष्टाविंशतिर्नयभेदाः ।

उपनयभेदा उच्यन्ते—सद्भूतव्यवहारो द्विधा । शुद्धसद्भूतव्यवहारो यथा—शुद्धगुणशुद्धगुणिनोः शुद्ध(१)पर्यायशुद्धपर्यायिणोर्भेदकथनम् । अशुद्धसद्भूतव्यवहारो यथाऽशुद्धगुणाशुद्धगुणिनोरशुद्धपर्यायाशुद्धपर्यायिणोर्भेदकथनम् । इति सद्भूतव्यवहारोपि द्वेधा ।

असद्भूतव्यवहारस्त्रेधा । स्वजात्यसद्भूतव्यवहारो यथा—परमाणुर्बहुप्रदेशीति कथनमित्यादि । विजात्यसद्भूतव्यवहारो यथा मूर्त्तं मतिज्ञानं यतो मूर्त्तद्रव्येण जनितम् । स्वजातिविजात्यसद्भूतव्यवहारो यथा ज्ञेये जीवेजीवे ज्ञानमिति कथनं ज्ञानस्य विषयात् । इत्यसद्भूतव्यवहारस्त्रेधा ।

उपचरितासद्भूतव्यवहारस्त्रेधा । स्वजात्युपचरितासद्भूतव्यवहारो यथा—पुत्रदारादि मम । विजात्युपचरितासद्भूतव्यवहारो यथा वस्त्राभरणहेमरत्नादि मम । स्वजातिविजात्युपचरितासद्भूतव्यवहारो

---

१ सिद्धपर्यायापन्नजीवस्य।

यथा—देशराज्यदुर्गादि मम। इत्युपचरितासद्भूतव्यवहारस्त्रेधा।

सहभावा गुणाः (१), क्रमवर्तिनः पर्यायाः। गुण्यते पृथक्क्रियते द्रव्यं द्रव्यान्तराद्यैस्ते गुणाः। अस्तीत्येतस्य भावोऽस्तित्वं सद्रूपत्वम्। वस्तुनो भावो वस्तुत्वम्, सामान्यविशेषात्मकं वस्तु। द्रव्यस्वभावो द्रव्यत्वम्। निजनिजप्रदेशसमूहैरखण्डवृत्त्या स्वभावविभावपर्यायान् द्रवति (२) द्रोष्यति अदुद्रवदिति द्रव्यम्। सद्द्रव्यलक्षणम्। सीदति स्वकीयान् गुणपर्यायान् व्याप्नोतीति सत्। उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्। प्रमेयस्य भावः प्रमेयत्वम्। प्रमाणेन स्वपरस्वरूपपरि(३)च्छेद्यं प्रमेयम्। अगुरुलघोर्भावोऽगुरुलघुत्वम्। सूक्ष्मा वागगोचराः प्रतिक्षणं वर्तमाना आगमप्रमाणादभ्युपगम्या अगुरुलघुगुणाः।

"सूक्ष्मं जिनोदितं तत्त्वं हेतुभिर्नैव हन्यते।
आज्ञासिद्धं तु तद् ग्राह्यं नान्यथावादिनो जिनाः"॥५॥

प्रदेशस्य भावः प्रदेशत्वं क्षेत्रत्वं अविभागिपुद्गलपरमाणुनावष्टब्धम् (४)। चेतनस्य भावश्चेतनत्वम् (५) चैतन्यमनुभवनम्।

चैतन्यमनुभूतिः स्यात् सा क्रियारूपमेव च।
क्रिया मनोवचःकायेष्वन्विता वर्तते ध्रुवम्॥६॥

अचेतनस्य भावोऽचेतनत्वमचैतन्यमननुभवनम्। मूर्तस्य भावो मूर्तत्वं (६) रूपादिमत्वम्। अमूर्तस्य भावोऽमूर्तत्वं रूपादिरहितत्वम् इति गुणानां व्युत्पत्तिः। स्वभावविभावरूपतया याति पर्येति परि-

---

१ अन्वयिनः। २ प्राप्नोति। ३ ज्ञातुं योग्यम्। ४ व्याप्तं। ५ अनुभूतिर्जीवाजीवादिपदार्थानां चेतनमात्रम्। ६ रूपरसगन्धस्पर्शवत्वम्

णमतीति पर्याय इति पर्यायस्य व्युत्पत्तिः। स्वभावलाभादच्युतत्वाद-स्तिस्वभावः। परस्वरूपेणाभावान्नास्तिस्वभावः। निजनिजनानापर्यायेषु तदेवेदमिति द्रव्यस्योपलम्भान्नित्यस्वभावः। तस्याप्यनेकपर्यायपरिणतत्वादनित्यस्वभावः। स्वभावानामेकाधारत्वादेकस्वभावः। एकस्याप्यनेकस्वभावोपलम्भादनेकस्वभावः। गुणगुण्यादिसंज्ञाभेदाद् भेदस्वभावः, संज्ञासंख्यालक्षणप्रयोजनानि (१)। गुणगुण्याद्येकस्वभावः। भाविकाले परस्वरूपाकारभवनाद् भव्यस्वभावः। कालत्रयेऽपि परस्वरूपाकाराभवनादभव्यस्वभावः। उक्तञ्च,—

"अण्णोण्णं पविसंता दिंता उग्गासमण्णमण्णास्स।
मेलंतावि य णिच्चं सगसगभावं ण विजहंति" ॥७॥

पारिणामिकभावप्रधानत्वेन परमस्वभावः। इति सामान्यस्वभावानां व्युत्पत्तिः। प्रदेशादिगुणानां व्युत्पत्तिश्चेतनादिविशेषस्वभावानां च व्युत्पत्तिर्निगदिता।

धर्मापेक्षया (२) स्वभावा गुणा न भवंति। स्वद्रव्यचतुष्टयापेक्षया परस्परं गुणाः स्वभावा भवंति। द्रव्याण्यपि भवति। स्वभावादन्यथाभवनं विभावः। शुद्धं केवलभावमशुद्धं तस्यापि विपरीतम्। स्वभावस्याप्यन्यत्रोपचारादुपचरितस्वभावः। स द्वेधा—कर्मजस्वाभाविकभेदात्। यथा जीवस्य मूर्तत्वमचेतनत्वं, यथा सिद्धानां परज्ञता परदर्शकत्वं च। एवमितरेषां द्रव्याणामुपचारो यथासंभवो ज्ञेयः।

---

१ गुणगुणीति संज्ञा नाम। गुणअनेके गुणी त्वेक इति संख्याभेदः। सद् द्रव्यलक्षणं। द्रव्याश्रया निर्गुणागुणाः। २ स्वभावापेक्षया।

" दुर्णयैकांतमारूढा भावानां स्वार्थिका हि ते ।
स्वार्थिकाश्च विपर्यस्ताः सकलंका नया यतः " ॥८॥

तत्कथं? तथाहि—सर्वथैकांतेन सद्रूपस्य न नियतार्थव्यवस्था (१) संकरादिदोषत्वात्, तथा सद्रूपस्य सकलशून्यताप्रसंगात्. नित्यस्यैकरूपत्वादेकरूपस्यार्थक्रियाकारित्वाभावः . अर्थक्रियाकारित्वाभावे द्रव्यस्याप्यभावः । अनित्यपक्षेपि अनित्यरूपत्वादर्थक्रियाकारित्वाभावः (२), अर्थक्रियाकारित्वाभावे द्रव्यस्याप्यभावः । एकस्वरूपस्यैकान्तेन विशेषाभावः सर्वथैकरूपत्वात्, विशेषाभावे सामान्यस्याप्यभावः ।

" निर्विशेषं हि सामान्यं भवेत्खरविषाणवत् ।
सामान्यरहितत्वाच्च विशेषस्तद्वदेव हि" ॥९॥ इति ज्ञेयः ।

अनेकपक्षेपि तथा द्रव्याभावो निराधारत्वात् आधाराधेयाभावाच्च । भेदपक्षेपि विशेषस्वभावानां निराधारत्वादर्थक्रियाकारित्वाभावः, अर्थक्रियाकारित्वाभावे द्रव्यस्याप्यभावः । अभेदपक्षेपि सर्वेषामेकत्वम् । सर्वेषामेकत्वेर्थक्रियाकारित्वाभावः । अर्थक्रियाकारित्वाभावे द्रव्यस्याप्यभावः । भव्यस्यैकांतेन पारिणामिकत्वात् द्रव्यस्य द्रव्यांतरत्वप्रसंगात् संकरादिदोषसंभवात् । संकरव्यतिकरविरोधवैयधिकरण्यानवस्थासंशयाप्रतिपत्त्यभावाश्चेति । सर्वथाऽभव्यस्यैकान्तेऽपि तथा शून्यताप्रसङ्गात् स्वभावस्वरूपस्यैकान्ते संसाराभावः । विभावपक्षेऽपि मोक्षस्याप्यभावः । सर्वथा चैतन्यमेवेत्युक्ते

---

१ यथा सिंहो माणवकः (माणवको मार्जारः) २ निरन्वयत्वादित्यपि पाठः ॥

सर्वेषां शुद्धज्ञानचैतन्यावाप्तिः स्यात्, तथा सति ध्यानं ध्येयं ज्ञानं ज्ञेयं गुरुः शिष्यइत्यभावः। 'सर्वथाशब्दः सर्वप्रकारवाची, सर्वकालवाची नियमवाची, अनेकान्तसापेक्षी वा? यदि सर्वप्रकारवाची सर्वकालवाची अनेकान्तवाची या सर्वादिगणे पठनात् सर्वशब्द एवंविधश्चेत्तर्हि सिद्धं नः समीहितम्। अथवा नियमवाची चेत्तर्हि सकलार्थानां तव प्रतीतिः कथं स्यात्? नित्यः, अनित्यः, एकः, अनेकः, भेदः अभेदः कथं प्रतीतिः स्यात् नियमितपक्षत्वात्। तथाऽचैतन्यपक्षेऽपि सकलचैतन्योच्छेदः स्यात्, मूर्त्तस्यैकान्तेनात्मनो मोक्षस्यानवाप्तिः स्यात्। सर्वथामूर्त्तस्यापि तथात्मनः संसारविलोपः स्यात्। एकप्रदेशस्यैकान्तेनाखण्डपरिपूर्णस्यात्मनोऽनेककार्यकारित्व एव हानिः स्यात्। सर्वथाऽनेकप्रदेशत्वेऽपि तथा तस्यानर्थकार्यकारित्वं स्वस्वभावशून्यताप्रसंगात्। शुद्धस्यैकान्तेनात्मनो न कर्ममलकलङ्कावलेपः सर्वथा निरञ्जनत्वात्। सर्वथाऽशुद्धैकान्तेऽपि तथात्मनो न कदापि शुद्धस्वभावप्रसंगः स्यात् तन्मयत्वात् (१)। उपच(२)रितैकान्तपक्षेऽपि नात्मज्ञता सम्भवति नियमितपक्षत्वात्। तथात्मनोऽनुपचरितपक्षेऽपि परज्ञतादीनां विरोधः स्यात्।

"नानास्वभावसंयुक्तं द्रव्यं ज्ञात्वा प्रमाणतः।
तच्च सापेक्षसिद्ध्यर्थं स्यान्नयमिश्रितं कुरु"॥ १० ॥

स्वद्रव्यादिग्राहकेणास्तिस्वभावः। परद्रव्यादिग्राहकेण नास्ति-

---

१ अशुद्धस्वभावमयत्वात्। २ मुख्याभावे सति प्रयोजने निमित्ते चोपचारः प्रवर्त्तते।

स्वभाव: । उत्पादव्ययगौणत्वेन सत्ताग्राहकेण नित्यस्वभावः । केनचित्पर्यायार्थिकेनानित्यस्वभावः । भेदकल्पनानिरपेक्षेणैकस्वभावः । अन्वयद्रव्यार्थिकेनैकस्याप्यनेकस्वभावत्वम् । सद्भूतव्यवहारेण गुणगुण्यादिभिर्भेदस्वभावः । भेदकल्पनानिरपेक्षेण गुणगुण्यादिभिरभेदस्वभावः । परमभावग्राहकेण भव्याभव्यपारिणामिकस्वभावः । शुद्धाशुद्धपरमभावग्राहकेण [१] चेतनस्वभावो जीवस्य । असद्भूतव्यवहारेण कर्मनोकर्मणोरपि चेतनस्वभावः । परमभावग्राहकेण कर्मनोकर्मणोरचेतनस्वभावः ॥

जीवस्याप्यसद्भूतव्यवहारेणाचेतनस्वभावः । परमभावग्राहकेण कर्मनोकर्मणोर्मूर्त्तस्वभावः । जीवस्याप्यसद्भूतव्यवहारेण मूर्त्तस्वभावः परमभावग्राहकेण पुद्गलं विहाय इतरेषाममूर्त्तस्वभावः [२] । पुद्गलस्योपचारादेवास्त्यमूर्तत्वम् । परमभावग्राहकेण कालपुद्गलाणूनामेकप्रदेशस्वभावत्वम् । भेदकल्पनानिरपेक्षेणेतरेषां धर्माधर्माकाशजीवानां चाखण्डत्वादेकप्रदेशत्वं । भेदकल्पनासापेक्षेण चतुर्णामपि नानाप्रदेशस्वभावत्वं । पुद्गलाणोरुपचारतो नानाप्रदेशत्वं न च कालाणोः स्निग्धरूक्षत्वाभावात् । अरूक्षत्वाच्चाणोरमूर्त्तकालस्यैकविंशतितमो भावो न स्यात् । परोक्षप्रमाणापेक्षया सद्भूतव्यवहारेणाप्युपचारेणामूर्त्तत्वं । पुद्गलस्य शुद्धाशुद्धद्रव्यार्थिकेन विभावस्वभावत्वम् (३) । शुद्धद्रव्यार्थिकेन शुद्धस्वभावः । अशुद्धद्रव्यार्थिकेनाशुद्धस्वभावः । असद्भूतव्यवहारेणोपचरितस्वभावः ॥

" द्रव्याणां तु यथारूपं तल्लोकेपि व्यवस्थितम् ।

---

१ नयेन । २ जीवधर्माधर्माकाशकालानाम् ३ जीवपुद्गलयोः

तथा ज्ञानेन संज्ञातं नयोपि हि तथाविधः" ॥

इति नययोजनिका ।

सकलवस्तुग्राहकं प्रमाण, प्रमीयते परिच्छिद्यते वस्तुतत्वं येन ज्ञानेन तत्प्रमाणं । तद् द्वेधा सविकल्पेतरभेदात् । सविकल्पं मानसं तच्चतुर्विधम् । मतिश्रुतावधिमनःपर्ययरूपम् । निर्विकल्पं मनोरहितं केवलज्ञानं । इति प्रमाणस्य व्युत्पत्तिः । प्रमाणेन वस्तुसंगृहीतार्थैकांशो नयः श्रुतविकल्पो वा, ज्ञातुरभिप्रायो वा नयः, नानास्वभावेभ्यो व्यावर्त्य एकस्मिन्स्वभावे वस्तु नयति प्रापयतीति वा नयः । स द्वेधा सविकल्पनिर्विकल्पभेदात् । इति नयस्य व्युत्पत्तिः । प्रमाणनययोर्निक्षेप आरोपणं स नामस्थापनादि[१]भेदेन चतुर्विध इति निक्षेपस्य व्युत्पत्तिः । द्रव्यमेवार्थः प्रयोजनमस्येति द्रव्यार्थिकः । शुद्धद्रव्यमेवार्थः प्रयोजनमस्येति शुद्धद्रव्यार्थिकः । अशुद्धद्रव्यमेवार्थः प्रयोजनमस्येत्यशुद्धद्रव्यार्थिकः । सामान्यगुणाद्य[२]न्वयरूपेण द्रव्यं द्रव्यमिति द्रवति व्यवस्थापयतीत्यन्वयद्रव्यार्थिकः । स्वद्रव्यादिग्रहणमर्थः प्रयोजनमस्येति स्वद्रव्यादिग्राहकः । परद्रव्यग्रहणमर्थः प्रयोजनमस्येति परमभावग्राहकः ।

इति द्रव्यार्थिकस्य व्युत्पत्तिः ।

पर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येति पर्यायार्थिकः । अनादिनित्यपर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येत्यनादिनित्यपर्यायार्थिकः । सादिनित्य-

---

१ आदिशब्देन द्रव्यभावौ गृह्येते. २ सामान्यं द्रव्यत्वादि, गुणा ज्ञानादयः ।

पर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येति सादिनित्यपर्यायार्थिकः । शुद्ध-पर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येति शुद्धपर्यायार्थिकः । अशुद्धपर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येत्यशुद्धपर्यायार्थिकः ।

इति पर्यायार्थिकस्य व्युत्पत्तिः ।

नैकं गच्छतीति निगमो विकल्पस्तत्र भवो नैगमः । अभे-दरूपतया वस्तुजातं संगृह्णातीति संग्रहः । संग्रहेण गृहीतार्थ-स्य भेदरूपतया वस्तु येन व्यवह्रियत इति व्यवहारः । ऋजु प्रांज-लं सूत्रयतीति ऋजुसूत्रः । शब्दात् व्याकरणात् प्रकृतिप्रत्ययद्वारेण सिद्धः शब्दः शब्दनयः । परस्परेणाभिरूढाः समभिरूढाः । शब्दभेदेऽप्यर्थभेदो नास्ति । यथा शक्र इंद्रः पुरंदर इत्यादयः समभिरूढाः । एवं क्रियाप्रधानत्वेन (१) भूयत इत्येवंभूतः । शुद्धा-शुद्धनिश्चयौ द्रव्यार्थिकस्य भेदौ । अभेदानुपचारतया वस्तु निश्चीयत इति निश्चयः । भेदोपचारतया वस्तु व्यवह्रियत इति व्यवहारः । गुणगुणिनोः संज्ञादिभेदात् भेदकः सद्भूतव्यवहारः अन्यत्र (२) प्रसिद्धस्य धर्मस्या [३] न्यत्र (४) समारोपणमसद्भू-तव्यवहारः । असद्भूतव्यवहार एवोपचारः, उपचारादप्युपचारं यः करोति स उपचरितासद्भूतव्यवहारः। गुणगुणिनोः पर्यायपर्यायिणोः स्वभावस्वभाविनोः कारककारकिणोर्भेदः सद्भूतव्यवहारस्यार्थः । द्रव्ये द्रव्योपचारः, पर्याये पर्यायोपचारः, गुणे गुणोपचारः, द्रव्ये

१ एवमित्युक्ते कोऽर्थः क्रियाप्रधानत्वेनेति विशेषणम् २ पुद्गलादौ । ३ स्वभावस्य ४ जीवादौ ।

गुणोपचारः, द्रव्ये पर्यायोपचारः, गुणे द्रव्योपचारः, गुणे पर्यायोपचारः, पर्याये द्रव्योपचारः, पर्याये-गुणोपचार इति नवविधः सद्भूतव्यवहारस्यार्थो द्रष्टव्यः ।

उपचारः पृथग् नयो नास्तीति न पृथक् कृतः । मुख्याभावे सति प्रयोजने निमित्ते चोपचारः प्रवर्त्तते । सो पि सम्बंधोविनाभावः, संश्लेषः संबंधः, परिणामपरिणामिसंबंधः, श्रद्धाश्रद्धेयसंबंधः, ज्ञानज्ञेयसंबंधः, चारित्रचर्यासंबंधश्चेत्यादिः सत्यार्थः असत्यार्थः सत्यासत्यार्थश्चेत्युपचरितासद्भूतव्यवहारनयस्यार्थः ।

पुनरप्यध्यात्मभाषया नया उच्यन्ते । तावन्मूलनयौ द्वौ निश्चयो व्यवहारश्च । तत्र निश्चयनयोभेदविषयो व्यवहारो [१] भेदविषयः । तत्र निश्चयो द्विविधः शुद्धनिश्चयोशुध्दनिश्चयश्च । तत्र निरुपाधिकगुणगुण्यभेदविषयकः शुध्दनिश्चयो यथा-- केवलज्ञानादयो जीव इति । सोपाधिकविषयो शुद्धनिश्चयो (२) यथा—मतिज्ञानादयो जीव इति . व्यवहारो द्विविधः सद्भूतव्यवहारोऽसद्भूतव्यवहारश्च । तत्रैकवस्तुविषयः सद्भूतव्यवहारः, (३) भिन्नवस्तुविषयो सद्भूतव्यवहारस्तत्र सद्भूतव्यवहारो द्विविध उपचरितानुपचरितभेदात् । तत्र सोपाधिगुणगुणिनोर्भेदविषय उपचरितसद्भूतव्यवहारो यथा—जीवस्य मतिज्ञानादयो गुणाः । निरुपाधिगुणगुणिनोर्भेदविषयोनुपचरितसद्भू-

---

१ भेदेन ज्ञातु योग्यता । २ उपाधिना कर्मजनितविकारेण सह वर्त्तत इति सोपाधिः । ३ यथा वृक्ष एक एव तत्क्रमाः शाखा भिन्नाः परंतु वृक्ष एव, तथा सद्भूतव्यवहारो गुणगुणिनोर्भेदकथनं .

व्यवहारो यथा–जीवस्य केवलज्ञानादयो गुणाः । असद्भूतव्यव-हारो द्विविध उपचरितानुपचरितभेदात् । तत्र संश्लेषरहितवस्तुसं-बंधविषय उपचरितासद्भूतव्यवहारो यथा देवदत्तस्य धनमिति । संश्लेषसहितवस्तुसंबंधविषयोनुपचरितासद्भूतव्यवहारो यथा–जीव-स्य (१) शरीरमिति ॥

इति सुखबोधार्थमालापपद्धतिः श्रीमद्देवसेनाविरचिता परिसमाप्ता ॥

---

१ 'देवदत्तस्य' इति च पाठः ।